CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमाचार्य 108 श्री शांतिसागरजी महाराज

पुरस्कृत आलेख संग्रह

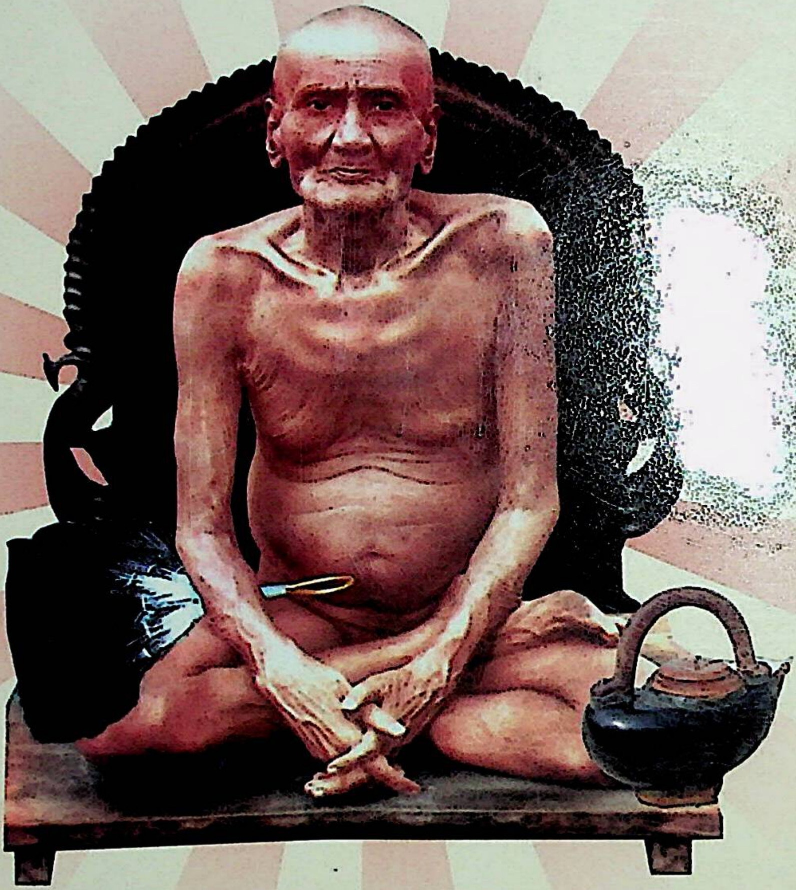

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज

- संकलन एवं सम्पादन-
डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य

चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज

का

संक्षिप्त परिचय

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महाराज हुए हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :-

जन्म	-	आषाढ़ बदी 6, सन् 1872
निवास स्थान	-	भोजग्राम (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
नाम	-	सातगौंडा पाटिल
माता-पिता	-	माता-सत्यवती, पिता-भीमगौंडा पाटिल
क्षुल्लक दीक्षा	-	ज्येष्ठ शु. 13, सन् 1914 ग्राम-उत्तूर (जिला-कोल्हापुर) महाराष्ट्र
दीक्षा गुरु	-	मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज
ऐलक दीक्षा	-	सन् 1917 गिरनार क्षेत्र, स्वयं भगवान के चरण सान्निध्य में
मुनि दीक्षा	-	फाल्गुन शु. 14, सन् 1920 ग्राम-येरनाल (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
दीक्षा गुरु	-	मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज
आचार्य पद	-	आश्विन शु. 11, सन् 1924, ग्राम-समडोली (जिला-सांगली-महाराष्ट्र), द्वारा-चतुर्विध संघ
चारित्र चक्रवर्ती पद	-	सन् 1937 गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महाराष्ट्र)
समाधिमरण	-	द्वि. भाद्रपद शु. 2, सन् 1955, कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

आचार्य देव ने अनेक दीक्षाएँ देकर चतुर्विध संघ सहित दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम तक सारे भारत में मंगल विहार करके दिगम्बर जैन मुनि परम्परा को पुनरुज्जीवित किया। अनेक तीर्थों पर जिन प्रतिमाएँ स्थापित करायीं, षट्खण्डागम ग्रन्थ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण करवाकर तथा विद्वानों से उनका हिन्दी अनुवाद करवाकर पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित करवाकर जिनवाणी को स्थायित्व प्रदान किया। ऐसे बहुत से जिनधर्म प्रभावना के कार्यों से इस भूतल पर अपने यश को चिरस्थायी कर दिया। उनकी अक्षुण्ण आचार्य परम्परा में श्री वीरसागराचार्य, श्री शिवसागराचार्य, श्री धर्मसागराचार्य, श्री अजितसागराचार्य, श्री श्रेयांससागराचार्य, श्री अभिनन्दनसागराचार्य हुए हैं तथा वर्तमान सप्तम पट्टाचार्य के रूप में श्री अनेकांतसागराचार्य चतुर्विध संघ का संचालन करते हुए जिनधर्म की प्रभावना कर रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1475

प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज

(आलेख संग्रह)

श्री ऋ० ब्र० दि० जैन पुस्तकालय 5625

संकलन एवं सम्पादन

डॉ. अनुपम जैन

कार्याध्यक्ष - तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

प्रकाशक

पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

अध्यक्ष

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

एवं

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर-250404 मेरठ

01233-280184, 280236, 09412708203

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

की प्रेरणा से तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष (2010-11) में आयोजित द्विस्तरीय निबन्ध प्रतियोगिता में पुरस्कृत 6 आलेखों का संकलन

कृति	–	प्रथमाचार्य 108 श्री शांतिसागरजी महाराज (आलेख संग्रह)
संकलन एवं संपादन	–	डॉ. अनुपम जैन
संस्करण	–	प्रथम-2012, द्वितीय-2018
मूल्य	–	रु. 50.00
मुद्रक	–	सुगन ग्राफिक्स, इन्दौर
प्राप्ति स्थल	–	डॉ. अनुपम जैन ज्ञान छाया, डी-14 सुदामा नगर, इन्दौर-452009 0731-2797790 094250-53822 anupamjain3@rediffmail.com

नोट - आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं। सम्पादक या प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखक ही अपने विचारों हेतु उत्तरदायी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय...

परमपूज्य, गणिनीप्रमुख, आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से मनाये जा रहे प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आ. शांतिसागर वर्ष के विविध आयोजनों की श्रृंखला में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में सम्पन्न कार्यकारिणी की बैठक (26.03.11) में द्विस्तरीय (प्रौढ़ एवं युवा) निबंध प्रतियोगिता के आयोजन का निश्चय किया गया। महासंघ के कर्मठ मंत्री श्री सुरेश जैन मारौरा, शिवपुरी (सम्प्रति-इन्दौर) को केन्द्रीय संयोजक मनोनीत कर 02.04.11 को विज्ञप्ति प्रसारित की गई।

विस्तारित अंतिम तिथि 30.06.2011 तक निम्नवत् प्रविष्टियां प्राप्त हुई -

प्रौढ़ वर्ग - 23, युवा वर्ग - 11 कुल - 34

प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन डॉ. अनुपम जैन- महामंत्री, श्री सुरेश जैन मारौरा- केन्द्रीय संयोजक, श्री सूरजमल बोबरा-सदस्य के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल की बैठक दिनांक 10.09.11 में किया गया। तदनुरूप 29.09.11 की विज्ञप्ति से निम्नवत् परिणाम घोषित किए गये -

प्रौढ़ वर्ग -

श्रीमती नीला जोहरापुरकर, नागपुर, प्रथम (5000/=)

श्री रजत जैन, सनावद, द्वितीय (3000/=)

श्रीमती कुसुम राजकुमार जैन, तृतीय (2000/=)

युवा वर्ग -

श्रीमती निकिता वैभव जैन, सनावद प्रथम (3000/=)

कु. अल्पना जैन, लार, टीकमगढ़, द्वितीय (2000/=)

कु. परिधि जैन, जबलपुर, तृतीय, (1000/=)

09.10.11 को जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के ससंघ पावन सान्निध्य में 6 विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। शेष सभी 28 प्रतियोगियों को प्रमाण पत्र एवं साहित्य प्रदान कर सम्मानित किया गया।

प्रतियोगिता में उ.प्र., म.प्र., महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान एवं दिल्ली आदि से प्रविष्टियां प्राप्त होना, पूज्य आचार्य श्री के प्रति सम्पूर्ण राष्ट्र में अनन्य श्रद्धा को व्यक्त करता है।

केन्द्रीय संयोजक श्री सुरेश जैन मारौरा जी ने इसके आयोजन में बहुत श्रम किया एतदर्थ उन्हें धन्यवाद। पुरस्कार राशि का प्रायोजन दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर की ओर से किया गया। विद्वत् महासंघ इस औदार्य हेतु संस्थान के प्रति कृतज्ञ है।

सभी प्रतियोगियों को बधाई देते हुए 6 पुरस्कृत आलेख यहां प्रस्तुत हैं । आशा है कि पाठकगण आचार्य श्री के जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को संयमित करने एवं संस्कृति की रक्षा का व्रत लेंगे।

- डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय संस्करण का प्रकाशकीय

परमपूज्य, दिव्यशक्ति, गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से मनाये जा रहे भगवान ऋषभदेव विश्वशांति वर्ष में प्रथमाचार्य, चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागरजी की पुण्यतिथि (समाधि दिवस) का विशेष महत्व है। बीसवीं सदी की इस विलक्षण प्रतिभा ने क्षीण होती दिगम्बर मुनि परम्परा को पुनर्जीवित किया तथा दक्षिण से उत्तर तक तथा पूर्व से पश्चिम तक दिगम्बर मुनि का निर्बाध बिहार सुनिश्चित किया। आपका समाधिदिवस भादो शुक्ल द्वितीया इस वर्ष 11 सितम्बर 2018 को आ रहा है। पूज्य आचार्य श्री का दीक्षा जन्म शताब्दी वर्ष 2019-2020 में आने वाला है। इसकी पूर्व बेला में संयोग से उनकी परम्परा के सप्तम पट्टाचार्य श्री अनेकान्तसागरजी इस वर्ष का वर्षायोग इन्दौर में कर रहे है। फलतः तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ ने **'श्रमण परम्परा का भारतीय संस्कृति को योगदान'** शीर्षक संगोष्ठी (10-11 सितम्बर 2018) के अवसर पर इस आलेख संग्रह का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया जिससे समाज इन महान आचार्य एवं उनकी परम्परा के अवदान से परिचित हो सके।

इस कृति के नये संस्करण के प्रकाशन में हमें दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) का सहयोग मिला एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर धार्मिक एवं पारमार्थिक ट्रस्ट, सुदामा नगर, इंदौर ने इस संगोष्ठी (10-11 सितम्बर 2018) के आयोजन में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ को सहयोगी बनाया एवं सम्पूर्ण अकादमिक दायित्व उसे प्रदान किये। यह महासंघ की स्वीकार्यता एवं विश्वसनीयता का प्रतीक है। मैं महासंघ की ओर से संगोष्ठी को सान्निध्य प्रदान करने वाले सभी संतों को नमन करता हूँ।

कृति का शीघ्र सुंदर मुद्रण करने हेतु सुगन ग्राफिक्स को भी धन्यवाद।

इन्दौर, सितम्बर 2018 — डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शांतिसागरजी एवं श्रमण परंपरा : कल, आज और कल

– नीला जोहरापुरकर जैन*

प्रस्तावना

श्रमण जगत में महामुनींद्र, चारित्र चक्रवर्ती, आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज का सर्वोपरि स्थान रहा है। उन्होंने णमोकार महामंत्र का **णमो–आइरियाणं** ये पद आदर्श रूप से भूषित किया है। अपने तप, त्याग और संयम पालन द्वारा मुनिचर्या का आगमोक्त मार्ग बताया। उनका जीवन महान **पथ प्रदर्शक** के रूप में था। वर्तमान में जो हमारी श्रमण परंपरा विद्यमान है, वे इन्हीं ऋषिराज की कृपा से है। संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के शब्दों में :

'प्रायः कदाचरण युक्त अहो धरा थी
सन्मार्ग रूढ़ मुनि, मूर्ति न पूर्व में थी।
चारित्र का नव नवीन पुनीत पंथ
जो भी यहाँ दिख रहा, तव देन संत ॥'

आधुनिक काल का विचार करते समय आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज का संपूर्ण व्यक्तित्व दृष्टिपथ के सम्मुख आता है। **उन्होंने करीब–करीब लुप्त होती मुनि परम्परा को पुनरुज्जीवित किया है। अज्ञान के अंधकार में भटकने वाले समाज को प्रकाश देने का कार्य इस प्रकाश पुरुष का है।** उनकी धर्मवाणी, उपदेश के माध्यम से पूरे भारत में निनादित थी, फलस्वरूप आज हमें मुनिदर्शन, आहारदान, धर्मोपदेश आदि का लाभ हो रहा है। व्रती, महाव्रती, रत्नत्रय संस्कारों को प्राप्त कर इस भव तथा परभव को सुधार रहे हैं। यह अपूर्व देन **परम पूज्य प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री शांतिसागरजी मुनिराज की ही है।**

आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज एवं श्रमण परंपरा :

''सच है यदि सूरी शांतिसागर संयम का रूप नहीं धरते,
जो अपनी काया से युग का कायाकल्प नहीं करते।
मानवता मान नहीं पाता, यदि जीवित मंत्र नहीं होते,
भारत गारत बन जाता, यदि ऐसे संत नहीं होते ॥''

भारत एक धर्म प्रधान देश है। आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज इस धर्मप्रधान देश के जैन आचार्य परंपरा के **20वीं सदी के प्रथम प्रभावक आचार्य हैं।** जिन्होंने अपने तप, कठोर तपश्चर्या, शुद्ध और आगमोक्त आचरण, निर्विकार मनोवृत्ति और प्रेरक व्यक्तित्व के कारण संपूर्ण भारत में, जैन और जैनेतर लोगों में, **जैन धर्म और श्रमण परंपरा** का अडिग गरिमामय स्थान बनाया है।

दिगम्बरत्व को स्वीकार कर, श्रमण होकर रहना कितना खडतर (कठिन) है, इसकी उन्हें कल्पना थी। इसलिये श्रावकों ने प्रथम संयम की एक–एक सीढ़ी चढ़कर (प्रतिमा लेकर) फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षुल्लक दीक्षा लेनी चाहिये। निर्ग्रंथ दीक्षा ये अत्युच्च और अंतिम सीढ़ी है। किसी अनभ्यस्त व्यक्ति को एकदम निर्ग्रंथ दीक्षा देना सयुक्तिक नहीं है। क्रम से एक-एक सीढ़ी चढ़कर फिर मुनि अवस्था तक पहुँचो, ऐसी उनकी सोच थी। **यही सोच आज भी सुदृढ़ और निर्दोष श्रमण परंपरा के लिये अत्यंत आवश्यक है।**

क्षुल्लक सातगौड़ा :

मुनि देवेन्द्रकीर्तिजी से आचार्य शांतिसागर महाराज ने प्रथम **क्षुल्लक** दीक्षा ग्रहण कर संयम पथ पर अग्रसर हुए, एक लंगोटी, शरीर पर अधूरा वस्त्र, पिंछी-कमंडलु इसके अतिरिक्त उनके पास किसी भी प्रकार परिग्रह नहीं था। उनके ज्येष्ठ भ्राता कुमगौड़ा ने क्षु. सातगौड़ा से भोज ग्राम में ही रहने को कहा, उनके लिये अलग गुफा का निर्माण, और घर पर ही आहार व्यवस्था होगी ऐसी योजना उनके समक्ष रखी। परन्तु श्रमण परंपरा की जीवन व्यवस्था से यह पूर्णतः विसंगत था।

'साधु किसी भी अर्थ से गृह और गृहस्थ से जुड़कर नहीं रहता, उसे निःसंग रहना चाहिये और आगम प्रणीत आचार संहिता का पालन दृढ़ता से करना चाहिये।' सातगौड़ा ने यह योजना स्वीकार नहीं की एवं इंकार कर दिया। क्षुल्लक सातगौड़ा अत्यंत आनंदित थे। पूरा परिग्रह छूट गया, पूर्ण समय अब ज्ञान की आराधना, ग्रंथों का वाचन, स्वाध्याय और चिंतन में लगाने से विचारों में प्रगल्लभता आयी। आ. कुंदकुंदस्वामी के अध्यात्म ग्रंथों एवं आ. गुणभद्राचार्य के आत्मानुशासन ग्रंथों का उन्होंने कई बार पारायण किया। जिससे आत्मतत्व के प्रति अभिरुचि निर्मित हुई, विचारों में सूक्ष्मता आयी।

समाज का साधु के प्रति कर्तव्य और साधु का समाज के प्रति कर्तव्य क्या है ? दोनों संस्थायें कैसे अन्योन्याश्रित है ? इसका मार्गदर्शन दिया। लोगों को पूजा-अर्चना, स्वाध्याय कैसे करना चाहिये, ये सिखाया। विरक्त हुए साधु ने गृहत्याग करना चाहिये, लेकिन समाज से संपर्क बनाये रखना चाहिये। समाज एक संग रहे, इसलिये प्रयत्न करना चाहिये, समाज को तोड़ने का नहीं, जोड़ने का कार्य करना चाहिये, ऐसी अपूर्व धर्म जागृति की। समाज शिक्षक की भूमिका निभायी। आहार होने के पश्चात् कुछ श्रावक दक्षिणा के रूप में कमंडलु में रुपये डालते थे। यह अनिष्ट प्रथा उन्होंने बंद की। जैनों के घरों में अज्ञान के कारण अन्य देवताओं की मूर्ति की स्थापना व पूजा की जाती थी। **इस संबंध में, देव, शास्त्र, गुरु इनकी सुयोग्य जानकारी व शास्त्रों का यथार्थ ज्ञान देकर, संपूर्ण समाज का धर्म विषयक अज्ञान दूर कर विचारशील बनाया।**

ऐलक शांतिसागर :

25 जनवरी 1918 में गिरनार यात्रा के समय तीर्थंकर नेमिनाथ-स्वामी के चरण पादुका को वंदन करते समय उनका दुपट्टा तेज हवा के झोके से उड़ गया। महाराज श्री अंर्तमुख हुए और मन में ही ऐलक पद की दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् सर्वत्र पद विहार कर समाज प्रबोधन का कार्य प्रारंभ किया। धर्मविहीन रूढ़ि, मिथ्यात्वी आचरण देखकर वे कभी क्रोधित नहीं हुए बल्कि सौम्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दों में अधार्मिक विचारों पर टीका करते थे। उस टीका में किसी पर भी अधिक्षेप नहीं करते। प्रपंच (संसार) का त्याग किये हुए महाराज के पास अनेक श्रावक श्रद्धा से घर संसार की समस्या भी कहते थे। लेकिन, महाराज उसमें न उलझकर सीमित शब्दों में हितकारक मार्ग सुझाते थे।

मुनि श्री शांतिसागर :

बेलगांव जिले के येरनाल ग्राम में, मुनि देवेंद्रकीर्ति के सानिध्य में पंचकल्याणक महामहोत्सव शुरु था। वहाँ पर लाखों की संख्या में श्रावक-श्राविका उपस्थित थे। स्वयं की दृढ़ इच्छा शक्ति से 2 मार्च 1920 को, अपरिमित जन समुदाय के समक्ष, मुनि देवेंद्रकीर्ति महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की, और सभी को जैन मुनि कैसे बनते है ये देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साधु के जीवन में ऐसे भाग्य के क्षण आये तो केवल उनका ही नहीं अपितु उसका परिणाम समाज के मानसिक और धार्मिक जीवन में भी होता है। पंडित वर्ग की अपेक्षा, संसार का त्याग करने वाले साधुओं का प्रभाव जन मानस पर अधिक पड़ता है। **इस तरह चतुर्विध संघ के मुनि नाम का प्रथम घटक जो चारित्र के ऊँचे शिखर पर था, मुनि शांतिसागरजी के रूप में जनता को नित्य दिखने लगा।**

मुनि श्री शांतिसागरजी आगे 35 वर्षों तक **धर्म सूर्य** की भांति संपूर्ण भारत में संचार कर उजाला फैलाते रहे। **आत्मकल्याण व स्वहित के साथ-साथ, समाज कल्याण व परहित का कार्य भी किया।** मुनि अवस्था में इतने वर्षों तक, आत्मकल्याण, समाजोन्नति व लोक प्रबोधन का कार्य करते रहना कोई सुलभ बात नहीं है। उनके जीवन कार्यों का, घोर तपश्चरण का, विशेष रूप से **श्रमण परंपरा** चैतन्यमयी बनाने के लिये किया गया 35000 कि.मी. का विहार उल्लेखनीय है। मुनि दशा का उन्होंने ऐसा सुंदर निर्वाह किया की लोग दंग रह गये। श्रावक उन्हें पलक पावड़ों पर उठाने की ललक मन में संजोये रहते थे। उनके उपदेश से सभी जन प्रभावित होते थे। **श्रेष्ठ संत** पारसमणि के समान होते हैं, जिसके स्पर्श से लोहा भी सोने में रूपांतरित हो जाता है। संत की कृपादृष्टि जिनके उपर पड़ती है उसे अलौकिक लाभ होता है। इसका उदाहरण कोन्नूर ग्राम में पतित व्यक्ति का संपूर्ण आयुष्य बदल गया और **श्री पायसागर** नाम के साधु अवतीर्ण हुए। कोन्नूर के चातुर्मास में 1923 में पायसागर महाराज क्षुल्लक रूप में दीक्षित हुए। उनकी कठोर तपश्चर्या एवं प्रेरक व्यक्तित्व के कारण संघ बढ़ता ही गया मुनि, क्षुल्लक, संघ में दाखिल हुऐ। 1924 में समडोली में चातुर्मास के समय क्षुल्लक वीरसागर को मुनि दीक्षा दी। महाराज श्री के ये प्रथम मुनि शिष्य थे इसके पश्चात् श्री नेमिसागरजी को भी निर्ग्रंथ दीक्षा दी। मुनिसंघ के प्रमुख, कठोर तपश्चरण कर समाज प्रबोधन करने वाले इस नाते से महाराजजी को आचार्य पदवी प्रदान की गई।

पूज्य श्री देवेंद्रकीर्ति महाराज जिनसे आचार्यश्री ने दीक्षा ली थी, उन्होंने आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज से श्रवणबेलगोला में प्रायश्चित लिया। याने गुरु ने शिष्य से प्रायश्चित लिया यह विलक्षण घटना थी। गुरु श्री देवेन्द्रकीर्ति जिनको निर्ग्रंथ मुनि की आचार पद्धति का ठीक से ज्ञान नहीं थी, क्योंकि मुनिदीक्षा का प्रमाण अज्ञात था। आचार्य शांतिसागर महाराज की आचार पद्धति देखकर उन्हें अपने दोषों की जानकारी हुई। इसलिये आचार्य श्री ने उन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रायश्चित देकर पुनः दीक्षा दी। मुनि का आचरण, निर्दोष और शास्त्र सम्मत होने की दृष्टि से ये अत्यंत आवश्यक था। आचार्य श्री ने श्रमण परम्परा की मजबूत चौखट डाल दी और चतुर्विध मुनिसंघ की रचना की। जिसमें ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका एवं मुनियों का समावेश था। संघ और संघ के कर्तव्य इसका महाराज ने शास्त्रों के आधार पर विचार कर सुव्यवस्थित संघ बनाया।

शुद्ध आचरण और निर्विकार मनोवृत्ति ये जैन साधु के चारित्र के अ। है, आज भारत की श्रमण परम्परा इसी नियमानुसार चल रही उसका सम्पूर्ण श्रेय आचार्य श्री को ही है, इसलिये उन्हें प्रथमाचार्य ऐसी उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्रमण परम्परा .... कल ....

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं :

'पडिवज्जदु सामण्णं, जदि इच्छासि दुक्ख परिमोक्खं'

अर्थात् दुःख से छुटकारा चाहते हो तो श्रमण्य (मुनिपद) को प्राप्त होओ, जिस प्रकार वंश चलाने के लिए पुत्र चाहिये, उसी प्रकार समाज और धर्म के सम्यक् संचालन के लिए श्रमण आवश्यक है। श्रमण परम्परा को भगवान महावीर स्वामी के युग में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। भ. महावीर स्वामी ने संत संस्कृति और परम्परा का बीजारोपण किया। भ. महावीर के निर्वाण पहचान 683 वर्षों तक ये परम्परा अखंड रूप से चलती रही। इसके बाद आचार्य कुंदकुंद, आचार्य उमास्वामी (3 शताब्दी), आ. समन्तभद्र (3-4 शताब्दी), आ. सिद्धसेन (5-6 शताब्दी) आ. देवनन्दि, पात्रकेसरी, आ. अकलंक (7वीं शताब्दी) आ. वीरसेन (9वीं शताब्दी) आचार्य विद्यानन्दि, आ. माणिक्यनन्दी (9वीं शताब्दी), आ. जिनसेन (9वीं शताब्दी), आ. गुणभद्र (10वीं शताब्दी) आ. नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती, आ. अमृतचंद्र, आ. देवसेन, आ. पदमनन्दि, (11-12वीं शताब्दी) जैसे प्रभावक आचार्य हुए, जिन्होंने वीर शासन की जबरदस्त प्रभावना की एवं श्रमण परम्परा को जीवित रखा। इसके बाद मुगलों ने, विदेशियों ने भारत में आकर अपना आधिपत्य दिखाना प्रारंभ किया। इनके आक्रमण से श्रमण परम्परा का ह्रास होना शुरु हो गया। दिगम्बर मुनियों का विहार करना दुष्कर हो गया। क्षेत्र एवं शास्त्रों की सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लग गया। इसी कारण श्रमण परम्परा खंडित हुई। साधु दर्शन दुर्लभ हो गये। फलस्वरूप धर्म एवं धार्मिकता का वातावरण क्षीण हो गया। निरर्थक कर्मकांड, अनिष्ट प्रथा का धर्म में प्रवेश हो चुका। इस दुर्धर काल में भी जैन समाज अपनी धर्म परम्परा टिकाने के लिए प्रयत्नशील था। मुगलों की सत्ता खत्म होने और ब्रिटिश सत्ता के प्रस्थापित होने पर धार्मिक स्वतंत्रता मिलने लगी। लेकिन जैन समाज में अज्ञान फैल चुका था। मुनि का आचरण तत्त्व शुद्ध नहीं था। मुनि अपवाद रूप में दृष्टिगत होते थे। आहार के लिए, पड़गाहन विधि से श्रावक अनभिज्ञ थे। शास्त्र, बाह्य आचार समाज में रूढ़ हो गया था और श्रमण ने उसे स्वीकार कर लिया था। जैन साधु परम्परा लगभग नाम शेष हो गयी थी। दक्षिण भारत में, यह परम्परा, अल्प प्रमाण में ही क्यों न हो, जीवित थी। उत्तर भारत में साधु दर्शन अनेक वर्षों तक दुर्लभ थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व. श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार ने अपनी वेदना, एक काव्य में व्यक्त की है, जिसकी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

"साधु का दर्शन कहीं पाता नहीं, दिल दुःखी है दुःख सहा जाता नहीं,
धर्म की चर्या थी उनसे जा-ब-जा, धर्म अब ढूंढे नजर आता नहीं।
कौम की किस्ती भंवर में जा फँसी, साधु तारक बिन तरा जाता नहीं,
जी में आता है कि मैं साधु बनूँ, साधु बिन साधु बना जाता नहीं ॥"

श्रमण परंपरा की अपोषक ऐसी परिस्थिति में जहाँ जैन साधु की दिनचर्या का निर्वहण मुमकिन नहीं था, तब आचार्य शांतिसागर महाराज ऐतिहासिक पुरुष के रूप में अवतीर्ण हुए। जो ऐतिहासिक कार्य शिवाजी महाराज ने हिंदू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये किया, वही कार्य आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ने जैन-धर्म और श्रमण परंपरा की रक्षा के लिये किया।

श्रमण परंपरा........आज.......

धनात्मक पक्ष :

(1) भौतिक वातावरण प्रधान इस बीसवी सदी में जन्में साधर्मी भाईयों का यह परम सौभाग्य है कि, निर्ग्रंथ वीतरागी गुरुओं के दर्शन सहज सुलभ है। यह आचार्य श्री का ही महान उपकार है।

(2) सन् 1947 में सरकार द्वारा हरिजनों के उद्धार के लिए एक कानून बनाया गया वो था **'हरिजन मंदिर प्रवेश कायदा'** जो सरकार द्वारा प्रेषित हुआ। जिसमें हिंदू इस शब्द में जैनों का समावेश किया गया था, और हरिजन भाईयों को हिंदू मंदिरों में प्रवेश का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ। तब हरिजन और हर किसी को जैन मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त होगा ऐसी स्थिति आ गयी थी। तब स्थिति की गंभीरता को देखते हुए आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ने, इस अन्याय के खिलाफ प्रतिज्ञा ली कि यह संकट जब तक दूर नहीं होगा तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करुँगा। क्योंकि हर किसी के मंदिर प्रवेश से मंदिरों में, शराबी, मांसाहारी, व्यसनी लोग जायेंगे जिससे मंदिरों में अशुद्धि होगी। इस प्रतिज्ञा के कारण पूरे देश में चिंगारी की लहर फैल गयी आचार्य श्री द्वारा **1005 दिनों का अन्न ग्रहण का त्याग** किया था। इस तप के कारण यह कानून सरकार को बंद करना पड़ा। इसी बदौलत आज हमारे मंदिर, तीर्थ, आयतन सुरक्षित हैं और जिसके कारण हमारी श्रमण परंपरा भी जीवित है। यह उपलब्धि स्वर्ण अक्षरों में लिखी जाने वाली है।

(3) इस पंचम काल में तपोधन, परम पूज्य आचार्य शांतिसागर महाराज के परंपरा के आ. वीरसागर, शिवसागर, धर्मसागर, अजितसागर, श्रेयांससागर, वर्द्धमानसागर, अभिनंदनसागर, पूज्य आ. समंतभद्र, पूज्य आ. विद्यानंद, पूज्य आ. विद्यासागर आदि और अनेक श्रमण-संस्था हमारे सामने हैं। वे उत्कृष्ट संत, उत्तम चारित्र के धारी हैं। जिनकी प्रेरणा से अनेक भाई-बहन खासकर नवयुवक संयममार्ग पर प्रवृत्त हुए हैं और हो रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4) आचार्य श्री के कारण ही आज हमारे सामने गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी, आदि और अनेक वैदुष्यमण्डित आर्यिकायें हैं। यह एक चमत्कार ही है। इन सबके द्वारा जो महती धर्म प्रभावना हो रही है, उसकी अनदेखी कोई नादान ही कर सकता है। यह सचमुच हमारा अहोभाग्य है कि हम उनके युग में रह कर, संयम पथ की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

(5) आगम का कथन है कि 24 तीर्थंकरों के काल में सात बार मुनि संस्था का उच्छेद हुआ, फलस्वरूप उतनी ही बार धर्म का ह्रास और लोप हुआ। यह सत्य है जब तक श्रमण परंपरा रहेगी, धर्म व संस्कृति की जड़ हरी रहेगी, फलती फूलती रहेगी।

(6) आज कई ऐसे युवा संत है, जो राष्ट्रसंत बनकर, संपूर्ण भारत में पदविहार कर प्रवचन के माध्मय से जीवन की सच्चाइयों को उजागर कर रहे हैं। जिससे जैन और जैनेतर लोग भी आकर्षित हो रहे हैं। फलस्वरूप जैनों का अहिंसामयी धर्म विश्व-धर्म बनने की ओर अग्रसर है।

(7) आज संतों के कारण युवक मंदिरों में आने लगे हैं। स्वाध्याय और पठन-पाठन की प्रवृत्ति का विकास हुआ है। धर्म, दर्शन और सिद्धांतों की जानकारी आज सामान्य जैन को पहले से अधिक है। धार्मिक संतों के ग्रंथ पहले के तुलना में आज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं वो भी बढ़िया से बढ़िया रंग रूप में। क्रियाकाण्ड के क्षेत्र में भी क्रांति हुई है। विधानों की तो बाढ़ आ गई है। संतों द्वारा नये-नये विधान रचे जा रहे हैं पहले जितने विधान होते थे, उससे अधिक अब पंचकल्याणक समारोह हो रहे हैं। तीर्थों पर, क्षेत्रों पर चहल–पहल बढ़ी है।

ऋणात्मक पक्ष :

1. साधुओं की संख्या वृद्धि पर आवश्यकता से अधिक ध्यान है, पर गुणवत्ता बनाये रखने का लक्ष्यों गौण हो गया है। महत्व संख्या वृद्धि का नहीं, गुणवत्ता का है। उस पर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो उसका फल हमें कल भुगतना पड़ेगा।

2. कलियुग में विकारों का पाया जाना कोई अनहोनी, आश्चर्यप्रद घटना नहीं है, कोई भी व्यक्ति या संस्था निर्दोष नहीं है फिर अकेला साधु मार्ग ही शिथिलाचार से बचा रहे यह कैसे संभव है ? साधु संस्था एवं श्रावक संस्था अन्योन्याश्रित हैं। हम श्रावकों का कर्तव्य है कि साधु की साधना में साधक बने, बाधक न बने। विधान पूजा, पंचकल्याणक इस धार्मिक विधि पर समाज का पैसा तो खर्च हो रहा है। लेकिन उसके कुछ सकारात्मक परिणाम न दिखकर, विज्ञापन, पत्रिका, पोस्टर के माध्यम से प्रदर्शन, दिखावा और अहंकार का पोषण हो रहा है एवं अनावश्यक धनराशि का अपव्यय हो रहा है।

श्रमण परम्परा .... कल .....

1. आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ने श्रमण परम्परा की नींव इतनी मजबूत बनाई है, वह कभी नष्ट नहीं होगी, मजबूत नींव पर यदि कोई इमारत खड़ी हो तो वो नष्ट तो नहीं होती लेकिन उसमें परिवर्तन, डागडूजी, रंग रंगोटी करना जरूरी है, जिससे वह इमारत आकर्षक दिखने लगती है। उसी तरह हमें समयानुसार श्रमण परम्परा में भी कुछ बदलाव अपेक्षित है।

2. कल साधु संस्था के आचरणगत शिथिलता में वृद्धि की संभावना लगती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. नवयुवक जिन्हें भौतिक सुख सुविधा की अनावर इच्छा है। धर्म ज्ञान का अभाव रहेगा, समय की कमी के कारण चमत्कार पर ज्यादा विश्वास होगा, यदि जैन धर्म में चमत्कार न दिखे तो वो अन्य धर्मावलम्बी, मिथ्यात्वी देव गुरुओं के शरण में भी जा सकते हैं। इसी कारणवश साधुओं के मंत्र-तंत्र और चमत्कार करने में वृद्धि होगी।

4. जो साधु अपने आचरण का कर्मठता से पालन करते हैं, जिनकी आहार पद्धति के नियम कठिन हैं, उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि कल ऐसे श्रावकों की संख्या में कमी आयेगी जो जैन धर्म के नियमों का कठोरता से पालन करते हो।

5. समय की कमी, विहारों में चलने वाले श्रावकों की संख्या की कमी, मार्ग में अन्य साधन व्यवस्था की कमतरता आदि अन्य कारणों से साधुओं का विहार कम हो जायेगा।

6. साधु संस्था की आचार संहिता में एक सूत्रता न होने के कारण, श्रमण संस्था अलग–अलग सम्प्रदायों में विभाजित होगी। पंथवाद के कारण, जैन समाज, मंदिर, क्षेत्र, विभाजित होने की कगार में खड़े हो जायेंगे। साधु संस्था द्वारा नये मंदिरों का निर्माण होगा। वर्षायोग ने एक खर्चीले उत्सव का रूप ले लिया है। जिससे चातुर्मास का बजट कुछ धनिक श्रावकों के कारण करोड़ों तक पहुंच जायेगा। जिसके फलस्वरूप मध्यम और निम्न वर्ग का श्रावक श्रमण संस्था से दूरी बनाये रखेगा। कहीं ऐसा न हो कि वर्षायोग अपनी प्रासंगिकता खो बैठे और साधु को स्वयं निर्मित मंदिरों में रहकर स्वयं व्यवस्था करना पड़े। साधु संस्था तो जीवित रहेगी ही, लेकिन धर्म, समाज का विघटन होगा।

7. क्रियाकांड, विधान, धार्मिक उत्सव, पंचकल्याणक महोत्सव में तेजी से परिवर्तन आयेगा। मेला या प्रदर्शन जैसा स्वरूप दिखेगा। आयोजकों की दृष्टि सिर्फ धन और धनिकों को महिमा मंडित करने में होगी। गुण और गुणीजनों का अवमूल्यन होगा। इससे धर्म का अहित होगा। श्रावक और श्रमण परम्परा का भी अहित संभव है।

8. आने वाले कल में, श्रमण और श्रावक का भावनिक लगाव, श्रावकों का साधु के प्रति जो आदरयुक्त भाव रहता है, वह कम होगा इसके लिये दोनों संस्था एक दूसरे को जिम्मेदार व दोषी ठहरायेंगें।

9. आज के मनुष्य का हर काम चाहे वह प्रभु पूजा का हो, धर्म ग्रंथों के स्वाध्याय का हो, गुरुभक्ति का हो, अथवा दान का, दया का हो, उन सबके पीछे खुद का स्वार्थ और धन की लिप्सा है। जिन-जिन चीजों से भगवान को चिढ़ है, वहीं सब चीजें हमें प्रिय है। (अहंकार) हम वंदन तो उनका करते है, लेकिन उनसे एक दूरी बनाये रखते है। ताकि वह हमें रोक न सके धन संग्रह से, उसके लिए किये गये पाप व फरेब से, फिर भी हम उन्हें पूजते हैं, चाहते हैं, लोग हमें धर्मात्मा समझे, इस दुहरी नीति के परिणाम स्वरूप आज श्रमण परम्परा भी दूषित हो रही है। कल और ज्यादा दूषित होगी। फिर उसे संभालने के लिये आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज जैसे ऐतिहासिक युग पुरुष की आवश्यकता होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समापन :-

जैन समाज आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज के उपकारों से कभी उऋण नहीं हो सकती। 84 वर्षों का उनका जीवन सूर्य के समान तेजस्वी रहा। श्रमण परम्परा में जो अंधकार छाया था। उसे दूर कर नया उजाला दिया। 19वीं सदी के चौथे चरण में क्रांति सूर्य ने जन्म लेकर 20वीं शताब्दी में अपनी प्रभा से पूरा जैन धर्म आलोकित किया।

उनके शिष्य रह चुके अनेक मुनि हैं, जो आज भी समाज में धर्म जागृति का काम उत्कृष्ट रूप से कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे। आचार्य श्री ने अपने जीवन में अनेक महान कार्य कर श्रमण परम्परा के सम्मुख ये आदर्श रखा कि साधु चाहे तो धर्म और समाज में जागृति ला सकता है। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काल में एक भी ग्रंथ की रचना नहीं की लेकिन जो-जो कहा वो सब आचरण में लाया है। उसकी कीमत इतनी है कि उस पर हजारों ग्रंथों का निर्माण हो सकता हैं। उन्होंने अपने अगाढ़ ज्ञान का उपयोग जैन श्रमण परम्परा की प्रगति के लिये किया और अपना जीवन अमल और पवित्र रखा।

कामना :

महान चारित्र के धनी परम पूज्य आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज को मैं विनयांजलि, श्रद्धांजलि, अर्पण करती हूँ। मन, वचन, काय से उनके चरणों में, नमन, वंदन, अर्चन करती हूँ। हे गुरुदेव ! आपके आशीर्वाद से अंत में समाधिमरण हो। णमोकार मंत्र का जप करते - करते प्राणों का विसर्जन हो। यही कामना करती हूँ।

* W/o श्री अनिल कुमार जोहरापुरकर,
लाड़पुरा, इतवारी,
नागपुर (महाराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज एवं श्रमण परम्परा

– रजत जैन*

तीर्थंकर महावीर जिनशासन के अंतिम एवं चौबीसवें तीर्थंकर हैं। उनके शासनकाल में जैन धर्म, देश के विभिन्न भागों में व्यापक रूप से प्रतिष्ठित रहा। भगवान महावीर की तपस्या और जन-सामान्य के लिए आत्मविकास तथा जीवन संरक्षण हेतु धर्म के स्वरूप को उपस्थित करने के कारण समाज के विभिन्न वर्गों में जैन धर्म के प्रति आदर का भाव रहा। भगवान महावीर के भक्तों में प्रतिभा और इससे सम्पन्न हजारों तपस्वी साधु शिष्य के रूप में थे, तो अनेक प्रतापी और प्रजावत्सल सम्राट भी महावीर के प्रति भक्ति रखते थे। इसी कारण तीर्थंकर द्वारा प्रचारित जैन धर्म उनके निर्वाण के बाद भी समाज में प्रभावशाली रहा।

भगवान महावीर के निर्वाण के समय ईसा पूर्व 527 से लेकर अगले 600 वर्ष तक के इतिहास में जैन संघ में अनेक आचार्य हुए हैं और उन्होंने अपनी साधना तथा ज्ञान के आधार पर जैन धर्म के विकास में अपूर्व योगदान किया है। भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात क्रमशः तीन केवली और पांच श्रुत केवली हुए जिनके मार्गदर्शन में सम्पूर्ण जैन संघ 162 वर्षों तक अविभक्त रहा। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय 12 वर्षों का दुर्भिक्ष पड़ा। आचार्य भद्रबाहु निमित्तज्ञानी थे। अतः उन्होंने भावी संकट को जानकर सम्पूर्ण संघ को दक्षिण भारत की ओर विहार करने का आदेश दिया तत्पश्चात् आचार्य धरसेनाचार्य के सान्निध्य में आचार्य द्वय पुष्पदंत एवं भूतबली के द्वारा षट्खंडागम व प्राचीन ग्रंथ कषाय पाहुड़ के द्वारा अरिहंत भगवान के वचनामृत दिव्य ध्वनि द्वारा हमें लिखित रूप में इन ग्रंथों से प्राप्त हुए। इसी प्रकार अन्य आचार्यों द्वारा समय समय पर भगवान की दिव्य ध्वनि हमें माँ जिनवाणी से प्राप्त होती रही है। इसके पश्चात् अनेकों विद्वानों द्वारा जैन समाज को माँ जिनवाणी का प्रारूप प्राप्त होता चला गया। इसी बीच सबसे अहम हमारी श्रमण परम्परा के प्रतीक चतुर्विध संघ के दर्शन दुर्लभ होते गये। ऐसे समय में पवित्रता के निकुंज, श्रेष्ठयोगी, बाल ब्रह्मचारी, जिनधर्म प्रभावक, वात्सल्य वारिधि विद्वान, महामना, तपस्वी सम्राट, भारत के धर्म जिज्ञासु, भव्य जीवों को धर्मोपदेशामृत पिलाने वाले, भोगाकांक्षा यशोलिप्सा से कोसों दूर, अतीत काल के समंतभद्र, अकलंक, कुन्दकुन्द जैसे मुनिश्री शांतिसागरजी महाराज सा. का जन्म हम सबके लिए कल्याणकारी, मंगलमयी, पापों का गलन करने में सहायक बनकर आया है। आचार्यश्री का जन्म एक ऐसे समय में हुआ जब समस्त जैन समाज इस युग के प्रथम तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित जैन श्रमण परम्परा के दर्शनार्थ तरस गये थे, ऐसे समय में इस महात्मा का जन्म लेना, मानों काल के घोर अंधेरे को एक दिया दिखाना हो। इस भौतिकवादी युग में हमें देव व शास्त्र दोनों देवालय में प्राप्त हो गये परंतु गुरु जो कि हमारी प्राचीन श्रमण - परम्परा के प्रतीक हैं, दुर्लभ हो गये थे। आचार्यश्री द्वारा जैन श्रमण संस्कार ग्रहण करने पर आज की इस 21वीं सदी में उन्हीं के द्वारा पूनर्जीवित दिगम्बरत्व श्रमण परम्परा के साधुओं, मुनि, आर्यिका माताओं के दर्शन लाभ कर हम पुण्यार्जन कर रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्यश्री का जीवन परिचय कहना सूर्य को रोशनी दिखाना हैं। इनका जन्म दक्षिण भारत में कर्नाटक राज्य के ग्राम येलगुल में हुआ। विक्रम संवत् 1929 की आषाढ़ कृष्ण 6 को क्षत्रिय वंश के पिता भीमगौड़ा पाटील व माता सत्यवती से जन्में इस बालक का नाम सातगौंडा रखा। जिस प्रकार तीर्थंकरों की माता को 16 स्वप्न आते हैं। उसी तरह माँ सत्यवती को भी गर्भावस्था में जिनेन्द्र भगवान की 108 सहस्र दलवाले एक सौ आठ कमलों से पूजा करने का दोहला उत्पन्न हुआ। दोहले का फल जानकर माँ अत्यधिक प्रसन्न हुई कि यह बालक अत्यंत धार्मिक, जग प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला व संसार के प्रपञ्च में नहीं फंसेगा। तीन भाइयों व एक बहन के लाड़ले भाई सातगौंडा का ब्याह मात्र 9 वर्ष की उम्र में ही हो गया, परंतु 6 माह पश्चात ही पत्नी का वियोग हो गया।

बचपन से वीतराग प्रवृत्ति वाले सातगौड़ा, शांत परिणामी, लौकिक आमोद-प्रमोद से दूर, अमीर-गरीब से व मूक प्राणियों में सदा ही दया भाव दिखाते थे। इतना बल था कि छः आदमियों को एक साथ गिरा देते थे व अपने कंधे पर मुनियों को नदी पार भी करवाया करते थे। उनकी निस्पृहता ऐसी थी कि अपनी कपड़ा दुकान पर आने वाले ग्राहक को स्वयं उनके हाथ से कपड़ा फाड़ने व पैसे गोलक में डालने को कहते थे एवं खेत में चिड़ियों व अन्य पक्षियों को अन्न खाने को देते थे, व पानी देते थे पर उड़ाते नहीं थे, क्योंकि वे उस समय माँ जिनवाणी के वाचन में ही अपना समय व्यतीत करते थे। ऐसी दयालुता व निस्पृहता उनमें कूट-कूटकर भरी थी।

सातगौंडा ने 32 वर्ष की उम्र में श्री सम्मेदशिखर जी की वंदना की, जहां से उन्हें उस यात्रा से त्यागी बनने की प्रेरणा मिली अतः उन्होंने वहां से एकाशन, घी-तेल त्याग का नियम ग्रहण किया। वैसे तो 16 वर्ष की उम्र में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया था और उनके वैराग्य का कारण भी पूर्व जन्म के संस्कारों से ही मिला था।

ज्येष्ठ शुक्ला 13 सन् 1914 को मुनिश्री देवेन्द्रकीर्ति महाराज से सातगौड़ा ने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर संयम की साधना की ओर पग बढ़ाया। प्रथम चातुर्मास कोगनोली ग्राम में हुआ, जहां पर दो बार सर्प का उपसर्ग भी हुआ। ऐलक दीक्षा स्वयं ने गिरनार पर्वत पर भगवान नेमीनाथ को साक्षी मानकर ले ली। बाद में दीक्षा गुरु श्री देवेन्द्र कीर्ति महाराज से कर्नाटक के येरनाल में फाल्गुन शुक्ला एकादशी 1920 ई. में मुनि दीक्षा ग्रहण की। कभी चीटियों, कभी शेर व पागल पुरुष द्वारा ईट मारना आदि-आदि का निर्भीक रूप से समता धारण करते हुए उपसर्ग सहा। आपको गुरुणांगुरु भी कहते हैं, क्योंकि जिन्होंने आपको दिग. जैनेश्वरी दीक्षा दी थी, उन्हें ही आपने दिगम्बर दीक्षा (मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति जी म. सा.) दी। समडोली ग्राम में सर्व सम्मति से आचार्य पद एवं चारित्र चक्रवर्ती का पद सिद्ध क्षेत्र गजपंथा में विशाल जैन समुदाय ने ही आपको तप, क्रियाओं एवं आपकी विलक्षण क्षमता को ही देखकर दिया एवं अपने को गौरवान्वित महसूस किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

35 वर्ष के इस मुनि जीवन में 25 वर्ष 8 मास उपवास में ही व्यतीत हुए, आपका अन्न का त्याग 1105 दिन तक रहा। 18 करोड़ णमोकार मंत्रों का जाप्य किया। आपने जीवन काल में 9938 उपवास किये। आप रात्रि में 1 बजे तक, दिन में 3 घंटे व सायंकाल 3 घंटे जाप्य करते थे। आपने सिंह निष्क्रीड़ित तप अपने जीवनकाल में तीन बार किया, जो आपके जैसे महामना ही कर सकते थे। सैद्धांतिक ग्रंथों का संरक्षण, जिससे आने वाली पीढ़ी के लिए एक आगम की वाणी प्राप्त हो, महाराजश्री ने ताम्र पत्तों को खुदवाकर संरक्षित करवाया। दक्षिण भारत की पद यात्राएं करके, उत्तर भारत में विहार किया, जहां उन्होंने देखा कि उत्तर भारत में जैन धर्म के प्रति शिथिलता काफी थी, वे निर्भीक होकर दिल्ली में सड़कों पर, राजमार्गों पर होकर चले जो धर्म प्रभावना में सहायक हुआ। धर्मायतनों के संरक्षण हेतु ही आचार्य श्री ने काफी समय के लिए अन्य त्याग भी किया था।

आचार्य श्री के निर्देशन में ही समाज के लिए गुरुकुल पद्धति, शैक्षणिक संस्था, जैन पाठशाला, अनाथ आश्रम, जिनवाणी संस्था, पुनर्विवाह निषेध, बाल विवाह निषेध, शूद्रजल त्यागी द्वारा ही मुनि आहार ग्रहण करना इत्यादि निर्देश दिये।

आचार्य परमेष्ठी के 36 मूलगुणों का पालन करते हुऐ, उन्होंने 10 मुनि दीक्षाएँ दी थीं, एक आर्यिका दीक्षा व 5 क्षुल्लिका दीक्षाएँ दी। आपने 42 चातुर्मास किये, अंतिम चातुर्मास कुंथलगिरि पर हुआ जहां पर 12 वर्ष की उत्कृष्ट सल्लेखना पूर्ण कर 36 दिन में समाधि का वरण किया। अपने अंतिम उपदेश में कहा **'अपने जीवन में संयम धारण करो डरो मत'**। समाधि के समय महाराज सा. की उम्र 84 वर्ष की जो सन् 1955 भाद्रपद शुक्ला 2 को समग्र जैन समाज के समक्ष सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि पर सम्पन्न हुई। आगे की अक्षुण्ण श्रमण-परंपरा, जो आज हम हमारे समग्र समाज के बीच मुनिसंघ को पाकर हर्षित हो रहे हैं, यह आपकी ही देन है।

श्रमण परम्परा : कल – आज और कल

श्रमण–जो श्रम करता है, तप करता है वह श्रमण है, जबकि श्रमण शब्द अन्य अर्थों को भी अपने में समेटे हुए है। जो साधक आत्म-स्वभाव की प्राप्ति के लिए स्वयं पुरुषार्थ करता है, योग-ध्यान करता है, तप करता है उसके इस श्रम के कारण वह श्रमण कहलाता हैं। इस श्रमण शब्द के साथ शमन, और सम का भाव भी जुड़ा हुआ है। शमन का अर्थ है, जो साधक अपनी इंद्रिय, कषायों, दूषित भावनाओं आदि पर विजय प्राप्त करता है उनका शमन करता है वह श्रमण है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने समान अन्य प्राणियों को भी रक्षण योग्य समझता है, उसके प्रति समता और अहिंसा की भावना रखता है वह श्रमण हैं। इस प्रकार श्रमण शब्द में पुरुषार्थ, इन्द्रिय-विजय और समता के भाव पूरी तरह जुड़े हुए हैं जो जैनधर्म के प्रमुख लक्षण हैं। अतः श्रमण शब्द जैन धर्म का परिचय देने वाला प्राचीन शब्द है और इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन साहित्य में प्रचुरता से प्राप्त हैं। यह इस बात का द्योतक है कि श्रमण धर्म (आज का जैन धर्म) वैदिक युग के पूर्व भी प्रचार में था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपरोक्त कथन से यही जाहिर होता है कि श्रमण धर्म आदिकाल से अब तक चलता आ रहा है एवम् आने वाले समय भविष्य में भी यही श्रमण-धर्म चलता रहेगा। जो जिन-धर्म के अनुयायी हैं, वे सभी इस श्रमण धर्म की नौका पर बैठकर स्वयं के लिए सिद्धत्व के मार्ग पर चलने के लिए बढ़ते है वह एक अकाट्य सत्य माध्यम हैं।

श्रमण परम्परा – कल (भूतकाल)

भारतीय संस्कृति में जो प्राचीन ऋषि, मुनि और आत्मविद्या के सिद्धहस्त महात्मा हुए हैं, उनमें भगवान आदिनाथ का प्रमुख स्थान हैं। भगवान आदिनाथ भारतीय संस्कृति और चिन्तन के विकास के आदि पुरुष हैं। श्रमण संस्कृति के आदि प्रवर्तक के रूप में उन्हें साहित्य और पुरातत्त्व में स्मरण किया जाता हैं। भारत में प्रचलित जैन धर्म को सभ्यता के प्रारम्भिक काल में श्रमण, व्रात्य, आर्हत्, निर्ग्रन्थ आदि नामों से जाना जाता था। भगवान आदिनाथ द्वारा ही प्रवर्तित जैन धर्म को नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवम् महावीर स्वामी ने अपने युग के अनुसार विभिन्न रूपों में विकसित किया। प्राचीन शास्त्रों से पता चलता है कि आदिनाथ स्वामी ने 72 कलाओं और 64 विज्ञानों की शिक्षा अपने पुत्रों को देकर उनकी शिक्षा का प्रसार जनमानस में भी किया। इस प्रकार भगवान आदिनाथ ने शिक्षा के द्वारा भोगयुग को कर्मयुग में बदलने के लिए अपूर्व श्रम और पुरुषार्थ किया।

भगवान आदिनाथ केवलज्ञान होने के पश्चात् सम्पूर्ण देश में विहार करते हुए जनमानस को धर्म का स्वरूप समझाते रहे। यह वही आत्मधर्म था जो आगे चलकर श्रमण-परम्परा और जैन धर्म के नाम से सुविख्यात हुआ। फिर यह श्रमण-परम्परा क्रमशः आदिनाथ से महावीर पर्यंत तक चलती रहीं। दस धर्मों का पालन करते हुए सभी तीर्थंकरों ने श्रमण-संस्कृति व पारम्परिक जैन धर्म की व्यवस्था में जनमानस की रुचि व भागीदारी को देखते हुए कई परिवर्तन किये, जिससे ऐसा प्रतीत न हो कि जैन धर्म किसी पर बोझ बनें। बड़े ही सरल तरीके से जप-तप, आत्म साधना की क्रियाओं में तप (श्रम) करके ही इस श्रमण-संस्कृति को जीवित रखा। भगवान महावीर जैन धर्म के नवीन संस्थापक नहीं, अपितु वे जैन श्रमण संस्कृति के परम वैज्ञानिक व्यवस्थापक थें। उन्होंने परम्परा से प्राप्त श्रमण धर्म को अपनी साधना में आत्मसात किया और तब अपने ज्ञान के द्वारा लोक के अनुकूल जैन धर्म के अनेक सिद्धांतों को जनता की भाषा प्राकृत में नये रूप में प्रस्तुत किया। तीर्थंकर महावीर ने रूढ़िवाद, पाखण्ड, असमानता आदि को अस्वीकार कर समता, पुरुषार्थ, नारी स्वातंत्र्य, कर्म सिद्धांत आदि मूल्यों की स्थापना करने में इस श्रमण संस्कृति को एक नया आयाम दिया। क्योंकि महावीर भगवान जानते थे, कि इस श्रमण परम्परा को यदि जीवित रखा जा सकता है तो उसका एक मात्र विकल्प श्रमण दीक्षा ही थी, जो राजमहल से नहीं चलाई जा सकती। अतः भगवान महावीर ने श्रमण-दीक्षा से लेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वाण महोत्सव तक धर्म अनुसार चर्या कर, समता धारणकर, परीषह सहकर अपने तप से कर्म की कालिमा को दूर कर अपने आत्महित के मार्ग में चलकर स्वयं को एवं समाज को कल्याणकारी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। भगवान की दिव्य ध्वनि आज हमारे पास मां जिनवाणी के रूप में प्राप्त हो रही है, जिसे आज हमें हमारे परम तपस्वी मुनियों, संघों के माध्यम से, इस अक्षुण्ण श्रमण-परम्परा के द्वारा हम तक पहुंचाया जा रहा है। परम्परा की क्रियायें, उनके द्वारा अपनाई गई दिगम्बरत्व अवस्था, ऐसा प्रतीत होता हैं कि मानो स्वयं अरिहंत भगवान का चलता-फिरता समोवशरण हमारे बीच ही हों। जिसे हम पाकर धन्य-धन्य हो गये।

श्रमण परम्परा – आज

श्रमण संस्कृति, जो हमें हमारे पूज्य तीर्थंकरों के द्वारा प्राप्त हुई हैं, उसके पश्चात् यह गणधरों, केवली, श्रुत केवली, पूर्वाचार्यों से होती हुई चली आ रही है। कुछ काल के लिए श्रमण धर्म (मुनिमार्ग) की जगह शून्य हो गई थी। तब इस सदी के प्रथम श्रमणाचार्य शांतिसागर महाराज ने इस अक्षुण्ण श्रमण परम्परा को पुनर्जीवित किया। वे जानते थे कि इस भौतिक वादी युग में जब मानव स्वयं के लिए समय नहीं दे पा रहा है, तब वो इस आत्म विधा के लिए किस प्रकार समय देगा। माँ जिनवाणी से सभी ज्ञान तो प्राप्त कर सकते हैं परन्तु उस रूप आचरण धारण करने, उस तरह का संयम पालन करने में एक निर्भीक, दृढ़-निश्चयी, जिन धर्म प्रभावक, परीषह विजयी, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर ही थे जिन्होंने फिर से इस जैन श्रमण-संस्कृति को एक नई दिशा दी।

श्रमण संस्कृति का लोप न हो एतदर्थ महाराज श्री ने श्रमण दीक्षा धारण कर अन्य धर्मावलंबियों को भी नियम से बांधकर मुनि / आर्यिका दीक्षा प्रदान की। जिससे संपूर्ण भारत में चलते-फिरते तीर्थ के समान आचार्य, मुनि, आर्यिका माता, क्षुल्लक-क्षुल्लिका माताएं सहित चतुर्विध संघ आज हमारे बीच में उपस्थित होकर धर्म की प्रभावना करते हुए मंगल विहार करते हैं। आज उनके द्वारा दीक्षित मुनियों की वट वृक्ष की भांति कई शाखाएं सम्पूर्ण भारत वर्ष में धर्म उपदेशना कर रहे हैं।

यदि आज की श्रमण परम्परा की बात करे तो आचार्य शांतिसागरजी महाराज के साथ-साथ आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) एवं आचार्य शांतिसागरजी (क्षाणी) का भी नाम आता हैं। आचार्य शांतिसागरजी महाराज के पट्ट परम्परा, जो केवल शूद्रजल त्यागी श्रावकों से ही आहार ग्रहण करती है, में क्रमशः आ. वीरसागर, आ. शिवसागर, आ. धर्मसागर, आ. अजितसागर, आ. श्रेयांससागर, आचार्य श्री अभिनन्दनसागरजी एवं संप्रति संघ के आचार्य वर्द्धमानसागरजी एवं वर्तमान पट्टाचार्य श्री अनेकान्तसागरजी है। अपने संघ के साथ इस पट्ट परम्परा की महती–महती प्रभावना कर रहे हैं। आचार्य वीरसागर से दीक्षित प्रथम गणिनी आर्यिका ज्ञानमति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माताजी ने भी अनेक पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित ग्रंथों की टीकाकर हम सभी जन मानस का उपकार किया है। जंबूद्वीप जैसे विशाल क्षेत्र पर तीन लोक की रचना कर विश्व के पटल पर जैन भूगोल का इतिहास समझाया। आचार्य शिवसागरजी के संघस्थ मुनि ज्ञानसागरजी एवं उनसे दीक्षित आ. विद्यासागरजी आज हम सभी के सामने विशाल संघसहित है। आचार्य विरागसागरजी महाराज ने सभी मुनि आर्यिकाओं के नाम 'व' से रखे है। साथ ही श्रमण परम्परा को भी जन मानस तक पहुंचा रहे हैं।

वर्तमान में परिप्रेक्ष्य में एवं इस भौतिकवादी युग में आज हम समाज जन यह भी देख रहे हैं कि कुछ मुनि चर्या में शिथिलता आ गई है, यदि आज कोई श्रमण जैन धर्म अनुसार आचरण नहीं करता है तो आने वाले पीढ़ी किस समझ से उन्हें अपनी श्रमण परम्परा का मानेगी, यह तो आचार्यों को ही इसका भान रखना होगा कि दीक्षा के पूर्व भैय्या, दीदी संघ के अनुसार ही चर्या करें , जिससे कोई हमारी श्रमण-परम्परा पर उंगली न उठाये।

इस भौतिकवादी सदी में मानव हर तरफ से भटका हुआ है। चाहे उसके दैनिक काम-काज लें या फिर धार्मिक क्रियाकलाप यदि कोई सच्चा श्रावक केवल जैन धर्म को मानता है एवं यदि किसी विकट परिस्थितियों का सामना करता है तो उसके लिए हमारे सामने जो चलते-फिरते तीर्थ है (हमारे मुनिराज) वे ही हमको धर्म के अनुसार, कर्म सिद्धांत से समझाकर हमारी भटकी हुई जिंदगी को एक नई दिशा देते हैं ।सन्मार्ग पर लगाते हैं।

मैं इस बात का पुरजोर समर्थन करूंगा कि यदि ये श्रमण संस्कृति के जीते जागते रूप श्रमण संघ न होता तो आज हम केवल किताबी कीड़ा बन कर रह जाते। ये तो हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से माँ जिनवाणी के सच्चे पुत्र है जो आगम अनुसार चल कर अपनी सीट मोक्ष मार्ग के लिए प्रशस्त कर रहे हैं । कुछ साधर्मी भाई इनको पंचम काल का मुनि कहकर स्वयं को छुपा रहे हैं। आज का परीषह बीते युग में कई गुना सहना पड़ता है, आज संहनन न होते हुए भी परम्परा अनुसार अपने को (मुनि संघ) उस प्राचीन श्रमण संस्कृति को संजोये हुए है, जो स्वयं तो तिर रहे है एवं हम सबको भी उस मोक्ष मार्ग पर चलने का मार्ग बताकर जन मानस का कल्याण कर रहे है।

श्रमण परम्परा – कल (भविष्य)

वर्तमान युग ज्ञान क्रांति एवं संचार का युग है। नित प्रति लौकिक ज्ञान की शाखाएं तीव्रगति से विकसित हो रही हैं। शिक्षा का स्तर बढ़ रहा है। किंतु नैतिकता एवं धार्मिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृति की आंधियों ने हमारी धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना को विकृत कर दिया है। स्वार्थपूर्ण जीवनशैली, अलगाववाद का वातावरण, संयुक्त परिवारों का विघटन, सामाजिक नैतिक मूल्यों में गिरावट इन सबका मूलकारण है, आत्मविश्वास की विस्मृति, तत्त्व ज्ञान का अभाव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना धर्म और दर्शन के बिना नामुमकिन है। यदि हमें संस्कारवान प्रबुद्ध पीढ़ी तैयार करना है तो बालवर्ग एवं युवा वर्ग को धर्म दर्शन का ज्ञान कराना ही होगा ताकि यह श्रमण परम्परा बनी रहे।

वर्तमान पीढ़ी धर्म के संस्कारों से विहीन होती जा रही है। आज बालपीढ़ी, युवापीढ़ी अपनी दिनचर्या का मंगलाचरण एवं समापन देशी–विदेशी चैनलों से करती है। पूजा परम्परा एवं ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए समय का अभाव है। देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करना तो दूर, ठीक से नमन् भी नहीं आता है। इस प्रकार के विषम वातावरण में संस्कृति एवं संस्कारों की रक्षा हेतु शिक्षण शिविर, मुनि चर्चा, योग शिविर, आधुनिक रूप से लगाये तो यह एक अमोघ उपाय है। स्वाध्याय के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़े, आचार्य भगवंतों की वाणी को सरल रीति से अन्य मुनिजन चर्चा में लावें, पाठशालाओं में लावें तथा उनके सान्निध्य में पठन-पाठन कर तत्त्व का ज्ञान समझाये। कम्प्यूटर, टी.वी. पर कैसेट व सीडी के माध्यम से श्रमण संस्कृति का ज्ञान ही आने वाली नींव को मजबूत करेगा।

मुझे विश्वास है कि हमारी श्रमण संस्कृति के श्रमण संघ से, आने वाली हमारी युवा पीढ़ी अपनी जिज्ञासाओं का न सिर्फ समाधान पायेंगी अपितु आगम ग्रंथों के पठन पाठन में तीव्र रुचि के साथ जुड़ेगी। हमारी यह श्रमण परम्परा युगों -युगों तक इसी तरह चलती रहेगी, जो कल थी, आज है और कल भी रहेगी।

* S/o श्री अजीत जैन
C/o श्री रखबचंद दशरथ सा.
195, भवानी मार्ग,
सनावद – 451111
जिला–खरगोन (म.प्र.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शांतिसागर एवं श्रमण परम्परा : कल आज और कल

– कुसुम राजकुमार जैन*

सत्संयम पयः पूर पवित्रित जगत्त्रयम् ।

शान्ति नाथं नमस्यामि विश्व विघ्नौध शान्तयाः ।।

जिन्होंने सम्यक चारित्र रूपी जल से त्रय जगत को पवित्र किया है, उन शांतिनाथ प्रभु को एवं बीसवी सदी के दिगम्बराचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज को विघ्न समूह की शांति के लिए नमस्कार हो।

प्रस्तावना–संसार की स्थिति के साथ-साथ समाज की स्थिति है। मानव समाज की स्थिति सदैव परिवर्तित होती रही है। कभी उन्नति का और कभी अवनति का समय आता रहा है, जैनागम में इसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल कहा है। जैनाचार के दो रूप है एक ग्रहस्थ का आचार दूसरा श्रमण का आचार। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का जो पूर्णरूपेण पालन करता है वह साधु या श्रमण कहलाता है। श्रमण आचार का आरंभ मूलगुणों से होता है। पर कल्याण की भावना से आचार्यगण नानाविध साहित्य का निर्माण कर आज भी श्रमण परम्परा को अक्षुण्ण बनाए हुए है। इसी आत्मघर्मी श्रमण परम्परा में महावीर के सिद्धान्तों का प्रचलन करने के लिए अनेकानेक समर्थ आचार्य हुए है। डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ने कालक्रम के अनुसार ऐसे आचार्यों को 4 कोटियों में वर्गीकृत किया है जो इस प्रकार है।

1. श्रुतधराचार्य–वह आचार्य, जिन्होंने सिद्धान्त, साहित्य, कर्म साहित्य, आध्यात्म साहित्य का सृजन आचार्यों के चारित्र और गुणों का जीवन में निर्वाह करते हुए किया है। यह युग संस्थापक और युगान्तरकारी आचार्य हैं। इन्होंने प्रतिभा के क्षीण होने पर नष्ट होती हुयी श्रुतपरम्परा को मूर्तरूप देने का कार्य किया। जैसे–घरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि आदि।

2. सारस्वताचार्य–वह आचार्य, जिन्होंने प्राप्त हुई श्रुत परम्परा का मौलिक प्रणयन और टीका साहित्य द्वारा प्रचार-प्रसार किया। इन आचार्यों में मौलिक प्रतिभा तो रही है पर श्रुतघरों के समान अंग और पूर्व साहित्य का ज्ञान नहीं रहा। जैसे–समन्तभद्र, जिनसेन, अकलंक आदि।

3. प्रबुद्धाचार्य–ऐसे आचार्य जिन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा ग्रंथ प्रणयन के साथ टीकायें और भाष्य भी रचे हैं। कल्पना की रमणीयता या कल्पना की उड़ान प्रबुद्धाचार्यों में अधिक है इस श्रेणी के आचार्य पद्मनंदी, वादीभसिंह, हरिषेण आदि।

4. परम्परा पोषक आचार्य–वे आचार्य अथवा नग्न दिगम्बर भट्टारक हैं, जिन्होंने दिगम्बर परम्परा की रक्षा के लिए प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्मित ग्रंथों के आधार पर अपने नवीन ग्रंथ लिखे जैसे आचार्य नेमिचन्द्र, भट्टारक सकल कीर्ति आदि। दिगम्बर परम्परा पर कोई नया आक्रमण हुआ हो यह भी नहीं कहा जा सकता, इससे पहले भी भगवान अजितनाथ स्वामी, भगवान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेयांसनाथ, भगवान नेमिनाथ स्वामी, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान महावीर स्वामी के समय में भी आक्रमण हुए थे। घानियों में, कड़ाहों में, आरों से, तीरों से तलवारों से दिगम्बर जैन मुनियों पर उपसर्ग हुए फिर भी श्रमण परम्परा को समाप्त न कर सके, फिर आज यह क्या कर सकेगे? जिनकल्पी मुनि तो आज हमारे मध्य नहीं है, स्थविरकल्पी मुनि हमारे मध्य है जिनमें कुछ न कुछ कमी संभव है फिर उसे गुरु के समीप व्यक्त करके दूर किया जा सकता है। आगम की आज्ञा प्रमाण वर्तमान साधु अपनी चर्या आदि करते है हाँ कुछ मुनि अवश्य शिथिलाचारी रहे हैं, जो जैन साधुओं को उचित नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दिगम्बर जैन धर्म में चतुर्विध संघ है ही नहीं या सभी मुनि द्रव्यलिंगी है। यहाँ पर यह बात समझने की है कि मुनि संघ के बिना धर्म की परम्परा नहीं चल सकती। इक्कीस हजार वर्ष का यह पंचम काल है और आगमानुसार तब तक धर्म रहेगा और अंत तक चतुर्विध संघ जन्म लेता रहेगा पंचमकाल के अंत में वीरंगज मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका तथा अग्निदत्त और पंगुश्री श्रावक-श्राविका युगल होंगे। इस दुषमा काल में भी भावलिंगी मुनि होते हैं और अंत तक होते रहेंगे। ऐसे दुषमाकाल में जबकि मुनि धर्म बिल्कुल लुप्त होता जा रहा था उत्तर प्रांत में कोई साधु देखने तक के लिए नहीं था तब मूलसंघ के कुन्दकुन्दान्वय में नन्दि संघ, सरस्वती गच्छ और बलात्कारगण सर्वत्र अपनी प्रसिद्धि से व्याप्त हो रहा है इसी परम्परा में आचार्य शांतिसागर जी हुये।

श्रमण परम्परा में आचार्य शांतिसागर का योगदान—बीसवीं सदी में आचार्य श्री का जन्म हुआ, उस समय दक्षिण में प्रायः एक दो मुनि रह गये थे, राजाओं और नवाबों का शासनकाल था। मुनि लंगोट चढ़ा कर चर्या को जाते थे, मुनि परम्परा प्रायः लुप्त होने जा रही थी। आचार्य श्री ने अपनी कठोर तपस्या द्वारा प्रजा एवं शासकों को प्रभावित किया वह दिगम्बर वेष में ही चर्या को जाते थे। सभी लोग उनके भक्त बन गये थे उन्होंने विशाल मुनि संघ की स्थापना कर शिखर जी की यात्रा की आज वर्तमान में जो हमें मुनि आचार्य आदि के दर्शन हो रहे है, ये सब उन आचार्य श्री के असीम पुरुषार्थ का फल है। अतः धरती पर लुप्त होती मुनि परम्परा को आचार्य श्री ने पुनः जीवित किया। प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री ने दक्षिण भारत से विहार करके सन् 1925 ई. से जो दिगम्बरत्व की चमक-दमक उत्तर भारत में फैलाई। उससे भयभीत होकर इन शिथिलाचारियों ने वामपंथियों ने गुट बना लिया और शनैः-शनैः चमक दमक को नष्ट करने में लग गये, लेकिन वह अपने मिशन में उनके जीवन काल तक अंश मात्र भी सफल न हो सके। उन्होंने श्रमण परम्परा को बढ़ाते हुये अपने संघ को बढ़ाया। उनके पट्टाधीश परमपूज्य चारित्र शिरोमणी श्री 108 आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज ने गुरु परम्परा को अखंड रखा। उनके पट्टाधीश परम तपस्वी आत्म ध्यानी श्री 108 आचार्य शिवसागर जी महाराज ने परम्परा पर कठोर नियंत्रण किया। उनके पट्टाधीश चारित्र शिरोमणी, परमशांत स्वाभावी, परम दिगम्बर श्री आचार्य धर्मसागर जी महाराज अपनी परंपरा पर दृढ़ता से कायम रहे। चारित्र चक्रवर्ती 108 श्री शांतिसागर महाराज के परम शिष्यों में परम तपस्वी चारित्र शिरोमणी आचार्य श्री 108 नेमिसागर जी महाराज, पूज्य श्री 108

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पायसागर जी महाराज, पूज्य श्री 108 कुथुंसागर जी महाराज, पूज्य आचार्य कल्प श्री 108 चन्द्रसागरजी महाराज, पूज्य श्री 108 नेमिसागर जी महाराज, पूज्य श्री 108 महावीरकीर्ति जी आदि ने दृढ़ता से मुनि धर्म दिगम्बर धर्म की रक्षा की। आज वर्तमान में परमपूज्य चारित्र शिरोमणी 108 आ. विद्यासागर जी महाराज, श्री 108 आ. विद्यानंदजी, 108 आ. विरागसागर जी आदि करीब 700 मुनि परम्परा पर दृढ़ है। निंदक निंदा में तन्मय है तो वह अपने कर्त्तव्य पालन में तन्मय है।

जैसे चक्रवर्ती 6 खंडों को अपने अधीन करता है, ठीक वैसे ही चारित्र चक्रवर्ती ने अपने विशिष्ट चारित्र के बल से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों/मानसो पर अपने रत्नत्रयमय जीवन का साम्राज्य स्थापित किया था। प्रभावित होने के 6 कारणों के सद्भाव से प्रभावित होने वाले मानस भी 6 प्रकार के होते हैं। 1. परिषह जय से प्रभावित, 2. तप से प्रभावित, 3. प्रज्ञा से प्रभावित, 4. जनोत्कर्ष व निर्बलोत्थान से प्रभावित, 5. दूरदर्शिता से प्रभावित, 6. सल्लेखना की साधना से प्रभावित। ये 6 प्रकार के मानस ही किसी के चारित्र स्वीकार करने के सशक्त आधार है।

जीवन परिचय–दक्षिण भारत में बेलगाँव के अंतर्गत भोज ग्राम है। उसके समीप लगभग

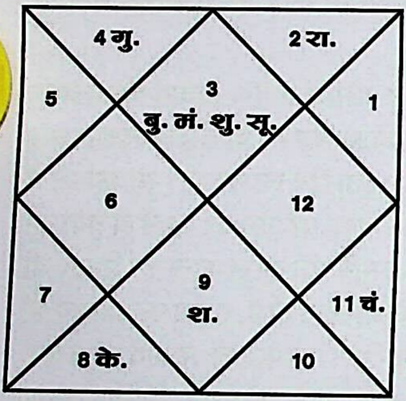

चार मील की दूरी पर येलगुल ग्राम में आषाढ़ कृष्ण 6 विक्रम सं. 1929 सन् 1872 में बुधवार को 26-6-1872 को इनका जन्म हुआ। यह ग्राम भोजग्राम के अंतर्गत होने से भोजग्राम ही इनकी जन्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध है। इनके जन्म के समय एक भी अशुभ योग नहीं है, दोषों के समूह को नष्ट करने वाला योग है। कुंडली के अनुसार जन्म के समय मानस योग है जो श्रेष्ठ है। आचार्य श्री की जन्म पत्रिका कर्नाटक भाषा में लिखी हुई थी इसके जीर्णोद्धार कर्त्ता आचार्य श्री के अनन्य भक्त उद्गांव के निवासी अप्पा शास्त्री है। इनका जन्म मामा के घर हुआ था। इनके गर्भ के समय इनकी माता को शुभ दोहला हुआ कि एक सहस्त्र दल वाले एक सौ आठ कमलों से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करूँ। कोल्हापुर के समीप के तालाब से वे कमल मँगवाये गये तथा माता ने भगवान की भक्ति पूर्वक पूजा की। क्षात्रिय वंशी भीमगौड़ा पाटील इनके पिता तथा सत्यवती जी इनकी माता थी। इनकी चतुर्थ जाति थी। जिसमें अनेक दीक्षार्थी महापुरुषों का जन्म हुआ था। इनकी नौ पीढ़ियों का वंश वृक्ष बताता है कि सभी लोग भूमि पाटील थे। इनके आदिगौड़ा और देवगौड़ा दो बड़े भाई थे तथा कुमगौड़ा नाम के छोटे भाई थे एवं कृष्णाबाई नाम की एक बहिन थी। गौड़ा शब्द भूमिपति–पाटील का द्योतक है, ये तृतीय पुत्र थे, इसी से मानव प्रकृति ने इन्हें **'रत्नत्रय और तृतीय रत्न सम्यक रत्नत्रय'** का अनुपम आराधक बनाया। बचपन से ही धार्मिक प्रवृति के थे, परम्पूज्य आदिसागर महाराज जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अत्यंत प्रभावित थे।आदिसागर जी महाराज परम तपस्वी थे। वे आठ दिन में एक बार आहार के लिए आते थे प्रायः उनका आहार आचार्य श्री के घर ही हुआ करता था। आचार्य उनको अपने कंधे पर बिठाकर नदी पार कराते थे। इतना अदभुत् शारीरिक बल था। करुणा का भाव इतना था कि एक वृद्धा को कंधे पर बिठाकर शिखर जी की यात्रा कराई थी तथा एक पुरुष को राजग्रही की वंदना कराई थी।

वैराग्य का कारण—आचार्य श्री का कहना था कि **'हमारा वैराग्य नैसर्गिक'** है। ऐसा लगता है कि जैसे यह हमारा पूर्व जन्म का संस्कार हो। ग्रह कुटम्ब में हमारा मन प्रारंभ से ही नहीं लगा। सदा मन में वैराग्य का ही भाव रहता। हृदय बार-बार ग्रहवास के बंधन को छोड़ दीक्षा ग्रहण करने के लिए स्वयं उत्कंठित होता था लेकिन पिता की शर्त थी कि मेरी समाधि के बाद ही तुम ग्रहत्याग करना उन्होंने पिता की आज्ञा तथा धर्म का निर्वाह किया। बालक सातगौड़ा का विवाह 9 वर्ष की आयु में ही हो गया था किन्तु वह बालिका 6 माह बाद परलोक सिधार गई। इसके बाद सातगौड़ा ने दूसरा विवाह नहीं किया तथा परमपूज्य मुनि श्री सिद्धसागर जी महाराज से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। ज्येष्ठ शुक्ला 13 सं. 1971 वीर निर्वाण सं. 2440 दिनांक 25.6.1914 ग्राम उत्तूर जिला कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में क्षुल्लक दीक्षा ली इनके दीक्षा गुरु श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज थे एवं ऐलक दीक्षा पोष शुक्ला 14 सं. 1974 वी.नि.सं. 2444 दिनांक 25.1.1918 सिद्ध क्षेत्र गिरनार जी जूनागढ़ गुजरात स्वयं भगवान के चरण सानिध्य में उत्तरीय वस्त्र त्याग कर ली। मुनि दीक्षा फाल्गुन शुक्ला 14 सं. 1976 वी.नि.सं. 2446 बुधवार 1920 ई. के दिन ग्राम येरनाल (जिला बेलगांव) कर्नाटक में ली। आपको आचार्य पद आश्विन शुक्ला 11 सं. 1981 वी.नि.सं. 2450 दिनांक 8.10.1924 ग्राम समडोली जिला (सांगली महाराष्ट्र) द्वारा चतुर्विध संघ एवं समाज द्वारा प्रदान किया। आचार्य श्री को सन् 1937 वि.सं. 1994 वी.नि.सं. 2463 में गजपंथा सिद्ध क्षेत्र महाराष्ट्र में समाज द्वारा चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत किया गया। आचार्य श्री के जीवन काल में उनके ऊपर अनेकों उपसर्ग आये जिनका उन्होंने सहज भाव से सामना किया।

उपसर्ग एवं परीषह विजेता—कोगनोली की गुफा में ये ध्यान करते थे। एक रात्रि को ग्राम से एक पागल व्यक्ति वहां आया और रोटी मांगने लगा, किन्तु शांति के सागर के भावों में विकार नहीं आया तथा वह पागल स्वयं थककर वहां से भाग गया।

कोगनाली की गुफा में आचार्य श्री रहते थे तथा वहाँ से सबेरे आहार के लिए जाते थे उस समय मार्ग में एक विप्र का घर पड़ता था उनका दिगम्बर रूप देखकर उसका दिमाग गरम हो गया उसने उनको वहाँ से निकलने की मनाही की, तब आचार्य श्री ने अपने आने-जाने का मार्ग बदल दिया जो कि बहुत लंबा पड़ता था कुछ समय पश्चात् इनकी शांति देख उसका मन बदल गया उसने क्षमा मांगी और प्रार्थना की कि महाराज पुनः उसी मार्ग से गमनागमन करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक बार आचार्य श्री के कण्ठ में भयंकर पीड़ा हुई तथा आहार लेते समय ग्रास कण्ठ में फँस गया तब श्रावक ने जल्दी से पानी दिया तब उनको राहत मिली। एक बार एक श्रावक ने खौलता हुआ दूध अंजली में दे दिया, दूध इतना गर्म था कि आचार्य श्री को मूर्छा आ गयी और अंतराय हो गया।

एक बार गर्मियों में श्रावक लगातार आहार देते समय जल देना भूल जाते थे ऐसा दस दिन तक चला गर्मी के कारण उनकी छाती में फफोले हो गये। कुछ पाप कर्म का उदय कम हुआ और महाराज कुछ लेने के योग्य ही नहीं रहे तब दसवें दिन जल ग्रहण किया।

महाराज श्री पहाड़ी की गुफा में सामायिक करते थे, एक सर्प आचार्य श्री के चारों तरफ लिपट गया, किंतु उसका उनके ऊपर कोई असर नहीं हुआ वे भेद-विज्ञान की विमल ज्योति द्वारा शरीर और आत्मा को भिन्न देखते थे उनकी दृष्टि मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, ज्ञानावरणादिक कर्मों के विनाश की ओर थी।

आचार्य श्री उस समय शेडवाल में थे वे पाटे पर बैठे थे, पाटे के नीचे पाँच फुट लंबा सर्प बैठा था, वह सर्प उस स्थान पर रात भर बैठा रहा। दिन निकलने पर सर्प को सब लोगों ने देखा और आचार्य श्री बिना शरीर की चिंता किये ध्यान में मग्न थे।

महाराज कोगनाली में जब क्षुल्लक की अवस्था में आये थी। तब भी रहाँ सर्पकृत उपसर्ग हुआ था। वहां के प्राचीन मंदिर में महाराज ध्यान के हेतु बैठे थे। ध्यान आरंभ करने के पूर्व कुछ जिन नाम स्मरण पाठ पढ़ रहे थे कि विशाल विषधर वहाँ घुसा, और उनके शरीर से लिपट गया महाराज श्री कह रहे थे **'समता सर्व भूतेषु'** सब जीवों से मेरा साम्य भाव है। **'मित्ती मे सव्व भूदेसु'** सर्व जीवों से मैत्री भाव है।

एक दिन आचार्य श्री गुफा में ध्यान कर रहे थे इतने में एक सात आठ हाथ लंबा मोटा लट्ट सरीखा सर्प आया और मुँह के सामने फन फैलाकर खड़ा हो गया, उसके नेत्र लाल और जीभ बाहर निकाल लपलप करता था। लेकिन वह भी महाराज के सामने झुक गया इस तरह महाराज के जीवन काल में पांच बार सर्प चढ़ा और निमित्त शास्त्र के जानने वालों का ऐसा अभिमत है कि जिस व्यक्ति के शरीर पर सर्प चढ़कर लीला करे और उसे बाल-बाल छोड़ दे तो वह व्यक्ति संसार में महापुरुष होगा। महापराक्रमी, अलौकिक कार्य कर संसार का उद्धार करेगा।

कोन्नूर के जंगल में महाराज सामायिक कर रहे थे, इतने में एक कीड़ा-मकोड़ा उनके पुरुष चिन्ह से चिपक गया और खून चूसता रहा किन्तु महाराज डेढ़ घंटे तक ध्यान करते रहे।

एक दिन जंगल के मंदिर में महाराज श्री ध्यान करने बैठे, वहाँ का पुजारी दीपक जलाने आया, और तेल डालते समय कुछ तेल भूमि पर फैल गया। जिससे असंख्यात चीटियां आ गयी और महाराज श्री के शरीर को काटना प्रारंभ कर दिया, किन्तु आचार्य श्री घंटे दो घंटे नहीं रात भर उस उपसर्ग को सहन करते रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मयुग प्रवर्तक संत–इस एक पवित्र आत्मा ने प्रहरी की भाँति भव्यात्माओं को जगाना प्रारंभ किया, जिसके कारण पंचमकाल रूपी डाकुओं के शासन में भी भव्य जीव अपने रत्नत्रय की सम्हाल करते हुए मुक्तिपुरी की ओर बढ़ते हुये देखे जा रहे हैं।

इन्होंने देखा कि लोगों में कुदेवों की भक्ति विद्यमान है। लोग जिनेन्द्र देव को भूलकर चतुर्गति रूपी संसार में डुबोने वालों की आराधना में संलग्न है। कुल परम्परा में आगत प्रवृत्तियों को, रूढ़ियों को बदलना धारा का मुँह फेरना जैसा होता है इनके मुख से शब्द निकलते ही भक्त 'मिथ्यात्व' का त्याग का नियम ग्रहण कर लेते थे। जैनवाड़ी में महाराज ने मिथ्यात्व का त्याग कराके गाड़ी भर-भर के देवी देवताओं को नदी में सिरवाया था तथा वहाँ 'सम्यक्त्व' की धारा बहा दी।

उत्तर प्रांत में शिथिलाचार जो उत्तर प्रांत में खान-पान में जो शिथिलता थी, उसका सुधार किया। प्रायः प्रत्येक घर में पानी भरने का कार्य जो करता था वह माँस भोजी रहा करता था। मूल बात इतनी थी हीन आचरण और हीन संस्कार वाले वर्ग के हाथ का जल यदि भोजनालय में जाता है, तो वैसा अशुद्ध जल निर्मित आहार महाव्रती साधु की श्रेष्ठ अहिंसा की साधना के अनुकूल कैसे होगा ? यही बात दूर तक सोचकर महाराज ने प्रतिज्ञा की थी कि जो **'शूद्र जल का त्यागी होगा उस जैनी के हाथ ही आहार ग्रहण करेंगे'**। महाराज कहने लगे हमें हरिजनों पर दया आती है, हमें उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए सब हमारे भाई है सब पर दया करना जैनधर्म का मूल सिद्धांत है हम पूर्व भव में कई नीच पर्याय धारण कर चुके हैं। हरिजनों के प्रति हमारा द्वेष भाव नहीं है।

दूर-दूर के ग्रामीण आचार्यश्री के दर्शनार्थ आते थे। छत्तीसगढ़ में विहार के समय हजारों व्यक्तियों को मद्य, माँस आदि को त्याग कराकर उन जीवों का सच्चा उद्धार किया। पाप कार्यों को त्याग कर ही जीवों का उद्धार होता है।

उत्तर प्रांत में विहार के मुख्य उपदेश–उत्तर प्रांत में विहार के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे– (1) संस्कार की दृढ़ता, (2) विधवा विवाह और विजातीय विवाह का निषेध, (3) शूद्रजल का त्याग, (4) स्पर्शास्पर्श भेद निवारण का निषेध, (5) यज्ञोपवीत संस्कार। वस्तुतः ये पाँचों विषय देश, समाज एवं जाति की उन्नति के लिए इतने हितकारी हैं कि इन उद्देश्यों की पूर्ति से ही सर्वांगीण उन्नति हो सकती है। जब से समाज में संस्कारों का प्रचार उठने लगा है तभी से असंस्कृत बालकों का जन्म होने से बालकों के विचारों में भी नीच विचारों का समावेश हो गया यही मुख्य कारण है कि आज समाज में समाज का अहित करने वाले धर्म विरुद्ध, विधवा विवाह विजातीय विवाह आदि विषयों का समर्थन करने वालों का गुट दिख रहा है। यह समाज का दुर्भाग्य है। वर्णाश्रम धर्म का आचरण जब से छोड़ा गया तभी से देश व धर्म की अवनति होने लगी। स्वेच्छाचार तथा उच्छृङ्खल प्रवृत्ति बढ़ने लगी। लोग चाहे जिसके हाथ का खान-पान करने लगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वत्र इसी बात की घोषणा होने लगी कि खाने-पीने में धर्म का अवलम्बन नहीं है, बढ़ते-बढ़ते रोग इतना बड़ गया कि स्पर्शा-स्पर्श का जो भेद है वह भी मिटा दिया जाये एवं केवल एक मनुष्यत्व रहे। हमें इस बात का भय है कि ये ही उच्छृङ्खल प्रवृत्ति के लोग कहीं ऐसा न कहने लगे कि मनुष्य और पशु का भेद भी मिटा देना चाहिए। केवल मात्र जीवत्व रहना चाहिए सारांश यह है कि ऐसी उच्छृङ्खल प्रवृत्ति एवं धर्म विरुद्ध विचारों एवं प्रवृत्तियों की उत्पत्ति जैन समाज में भी हुई है फिर भी हर्ष है कि तपोनिधि आचार्य श्री के विहार से हजारों लोगों ने विधवा विवाह और विजातीय विवाह सदृश निंद्य कार्यों को नहीं करने की प्रतिज्ञा की। संस्कारहीन लाखों मनुष्यों ने यज्ञोपवीत धारण कर सज्ञातित्व चिन्ह को पुनरुज्जीवित किया है। हजारों भव्यों ने शूद्रजल का त्याग कर अपने को व्रती किया है। इतना ही नहीं लाखों जैनेतरों ने भी मद्य-माँस का त्याग कर अपने को धन्य माना है। इस प्रकार लाखों भूले भटके प्राणियों को आचार्य श्री ने सदुपदेश से धर्म मार्ग में लगाया एवं समाजोत्थान के लिए तथा अज्ञानी प्राणियों के लिए जो सदुपदेश मिल रहा है वह अलग ही है। सौ बात की एक बात है कि सहस्त्रों कर्मठ विद्वानों के सैकड़ों वर्ष तक अथक परिश्रम करने पर भी जो समाजोत्थान एवं समाज कल्याण का कार्य अति कठिनता से हो सकता था वह त्यागमूर्ति आचार्य श्री के द्वारा कुछ दिनों में सरलता से हो गया।

श्री शिखर जी की यात्रा संघ विहार—चतुर्थ काल में मुनीश्वरों का जैसा कुछ स्वरूप था ठीक वैसा ही परमशांत स्वरूप आचार्य श्री का था। महाराज श्री का संघ अनेक वर्षों तक दक्षिण में ही विहार करता रहा, परंतु भव्य जीवों के पुण्योदय से इनका बिहार सम्मेद शिखर उत्तर प्रांत में हुआ। इस कारण सर्व ही समाज को धर्म लाभ हुआ। इस संघ में चार मुनि महाराज, तीन आर्यिकायें, तीन ऐलक, एक क्षुल्लक, एवं 5-6 ब्रह्मचारियों ने विहार किया संघ में सभी धर्म बंधुओं की सर्व प्रकार की व्यवस्था की गई यह संघ दक्षिण महाराष्ट्र से शिखर जी तक पैदल मार्ग से गया। संघ सुरक्षा हेतु साथ में पुलिस का इन्तजाम भी किया गया। संघ के साथ श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा जी का समवशरण भी लिया गया था। संघ में धर्मोपदेश एवं धर्मचर्चा का योग बना रहे इसके लिए विद्वान-पण्डित को भी ले जाया गया। अपने आवश्यक पूरे कर सूर्य की किरणें फैलते ही तपस्वी जन आगे जाने के लिए विहार कर देते थे जब तपस्वीजन मुकाम पर पहुँचते तब वहाँ प्रथम दिन पहुँचे हुए श्रावक जन गरम जल के भरे हुए घड़े लिए तैयार खड़े रहते थे। शिखर जी तक संघ पूर्ण सुरक्षित रहा। आचार्यश्री की तपो महिमा तो कारण थी ही परन्तु साथ में संघपति का प्रबन्ध भी प्रशंसा योग्य रहा।

आचार्य श्री की हीरक जयंती—विश्व विभूति, विश्व वन्द्य, वीतरागता की मूर्ति, सिद्धांत पारंगत, परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शिरोमणि श्री शांतिसागरजी महाराज की हीरक जयन्ती सन् 1951 में जिला सतारा नगर फलटन में मद्य महोत्सव के साथ मनाई गई थी। इस अवसर पर विश्व के अनेकों महानुभाव उपस्थित हुये कुछ इस प्रकार है। इंग्लैण्ड के श्री जे.वी.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एस. हालडेन, अमेरिका के श्री चैस्टर वील्ज, चीन के श्री डावान मारिन, स्वीडन के श्री विजकमान, श्रीलंका के श्री सी.कुमार स्वामी, अफगानस्तिान के श्री डॉ. नजीवुल्ला खाँ, आस्ट्रेलिया के एच. रामगोपाल, नेपाल के महाराजाधिराज त्रिभुवन वीर विक्रमशाह, भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, अध्यक्ष लोकसभा श्री.जी.वी. मालवकर, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एन.चन्द्रशेखर अय्यर, मध्यकाल के प्रमुख महाराजा ग्वालियर श्री जीवाजीराव सिंधिया, कोचीन राज्यपाल श्री आशक अली, स्विटरजरलैण्ड में भारतीय राजदूत, बिहार के राज्यपाल श्री रंगनाथ दिवाकर, उड़ीसा के गवर्नर एस. फजल अली आदि। **वास्तव में आचार्यश्री महान तपस्वी आध्यत्मिक विज्ञान के सफल वैज्ञानिक और विश्व की अनुपम विभूति थे।**

आचार्य श्री का कठोर तप एवं ज्ञानोत्कर्ष—आचार्य श्री ने बाल्य जीवन में अनेक शास्त्रों का स्वाध्याय किया। चारों अनुयोगों में अनेक शास्त्रों का मनन किया है फिर आजन्म ब्रह्मचर्य, पूर्ण विशाल संयम शुद्धि एवं वृद्धिंगत महती तप शक्ति से आपका क्षयोपशम बहुत ही प्रवर्धमान रहा। आचार्य श्री स्वात्म साधना में कितने सावधान रहते, ये बात वे ही लोग जानते है जिन्हें आचार्य श्री के साथ में रहकर उनकी चर्या को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। 8-10 व्रतों को धारण करते रहना उनके लिए एक साधारण सी बात है। उसी प्रकार 5 या 6 घण्टे किसी भी दृढ़ासन से ध्यान में लीन हो जाना परमाभ्यास विषय है। आचार्य श्री उत्कृष्ट समय तक तो ध्यान में संलग्न रहते थे। परंतु संध्या के 6 बजे से 10 बजे तक ध्यान में तन्मय हो जाते थे फिर रात्रि में भी कभी 12 बजे कभी 2 बजे, ध्यानस्थ हो जाते थे। निद्रा अत्यल्प लेते थे, आचार्य महाराज कितने वीतरागी रहे यह बात आपके अप्रमत्त शासन से सिद्ध है। वे अपने रत्नत्रय मण्डित संघ पर शासन करते। आपके शासन के बाहर किसी भी पात्र का कभी गमन न होता सभी आपके आज्ञानुवर्ती बनकर स्वात्म सिद्धि में लगते थे। आपके मुख पर हर्ष एवं विवाद के चिन्ह कभी नहीं दिखे। आपके बिना कुछ कहे ही आपके वीतराग मूर्तिमान आदर्श से सर्वसंघ की क्रियायें यथावत होती थी। आचार्य श्री का यह अप्रमत्त शासन जिन लोगों ने देखा वे बड़े ही भाग्यशाली है। आचार्य श्री ने अपने साधु जीवन में सन् 1920 में निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर 1955 तक के वर्षों में आपने 1938 उपवास किये अर्थात् आपके 35 वर्ष के मुनि जीवन में 25 वर्ष 7 माह अनशन में बीते और 9 वर्ष 5 मास आपने आहार लिया। आपने सिंह निष्क्रीड़ित व्रत 3 बार; सोलहकारण व्रत 16 बार, श्रुत-पंचमी 36 बार, कर्मदहन 3 बार, तीस चौबीसी 720, चारित्र शुद्धि 1234 इस तरह आप स्पष्ट में 'तपोधन' ही थे। आपने साधु जीवन में 35000 मील पैदल विहार किया। एक बार कर पात्र में आहार लेते हुए इतना मनोबल और कायबल आश्चर्य को उत्पन्न करते हैं।

प्रतिज्ञा—बम्बई सरकार ने हरिजनों के उद्धार के लिए एक हरिजन मंदिर प्रवेश कानून सन् 1947 में बनाया। उसके नियम न. 2 ब में लिखा था कि 'हिन्दू शब्द में जैन का समावेश है' इस छोटे से नियम ने अनेक उपद्रवों के उत्पन्न होने के योग्य वातावरण उत्पन्न कर दिया। इस कानून

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का आश्रय लेकर सांगली के हरिजन सेवा संघ के मंत्री ने 4 अगस्त सन् 1948 को कुछ अस्पृश्य बंधुओं आदि को इकट्ठा कर जैन मंदिर में जबरदस्ती ले जाने का जाल रचा तब आचार्य श्री ने जिनेन्द्र भगवान को साक्षी मानकर 'भीष्म प्रतिज्ञा' कर ली कि जब तक बंबई कानून से आई हुई विपत्ति जैन धर्म के आयतनों जिन मंदिरों एवं जैन बिम्बों से दूर नहीं होती तब तक अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। यह सुनते ही सारे जैनसमाज में हड़कंप मच गया। लेकिन अथक प्रयासों अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुये अंततः निर्णय जैन समाज के हक में हुआ। यह सब आचार्य श्री की तपस्या का ही फल था तब आचार्य श्री ने 1105 दिन बाद अन्नाहार किया।

आगम रक्षण की भावना–आचार्य श्री ने आगम की रक्षा हेतु सिद्धांत शास्त्रों को ताम्रपत्र में उत्कीर्ण कराने का महान कार्य हुआ तथा षट्खण्डागम के सूत्र में संजद शब्द के विषय में आचार्य श्री क्यों विशेष ध्यान दिया ? धवल सूत्र ग्रंथ कम हो रहे थे आचार्य श्री के कारण धवलादिशास्त्रों का ताम्रपात्र में रक्षण का महान कार्य हुआ। इस बात से आचार्य श्री को ऐसी चिंता हुई जैसे धरसेन स्वामी को श्रुत संरक्षण के लिए हुई थी तथा भगवान महावीर स्वामी को श्रुत संरक्षण के लिए हुई थी। भगवान महावीर स्वामी की वाणी इन सूत्रों में थी यदि वह चार-पाँच हजार श्लोक नष्ट हो गये है, तो आगे इसकी कैसे रक्षा होगी इसी भाव से शास्त्र उन्होंने ताम्रपत्र पर खुदवाये।

श्रमण परम्परा कल आज और कल – महावीर भगवान के मोक्ष जाने के बाद ईसापूर्व तृतीय शताब्दी से लेकर ईसा की चतुर्थ शताब्दी तक में आचार्य गुणधर, अर्हद्बली कुन्दकुन्दाचार्य धरसेन, माघनन्दी, पुष्पदंत, भूतबली, भद्रबाहुं। पांचवी शताब्दी से आठवी शताब्दी तक के आचार्यों वीरदेव, चन्द्रनंदि, श्रीदत्त आदि नौवी दसवी शताब्दी में आचार्य विजदेव, महासेन, सर्वनन्दी आदि 11 से 18वीं शताब्दी में भी अनेकों आचार्य हुये। 18वीं शताब्दी में भट्टारकों का वर्णन आया। **भट्टारकों से यह नहीं समझना कि सभी वस्त्रधारी थे। वे परंपरागत गुरु के पट्ट पर आसीन आचार्य शिरोमणि थे इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रमण परम्परा कभी लुप्त नहीं हुई है। उसमें कभी-कभी शिथिलाचार अवश्य आया लेकिन बराबर यह बनी रही और उन्नीसवी बीसवीं शताब्दी में शांतिसागर जैसे धुरंधर आचार्य हुए। आज भी हमें जो इतने साधु दिख रहे है सब इन्हीं आचार्यों की देन है।**

पंचमकाल के अंत तक चतुर्विध संघ का अस्तित्व रहेगा तभी तक धर्म भी रहेगा। इस समय इस कलिकाल में भरत क्षेत्र के भीतर त्रैलोक्य चूड़ामणि केवली भगवान विराजमान नहीं है। फिर भी लोक को प्रकाशित करने वाले उनके वचन तो यहां विद्यमान हैं ही और उनके वचनों का आश्रय अबंलबन लेने वाले सद् रत्नत्रयधारी श्रेष्ठ श्रमण मौजूद है।

सल्लेखना–आचार्य श्री ने यम सल्लेखना ग्रहण की। आचार्य श्री ने अपना आचार्य पद देने हेतु श्री वीरसागरजी मुनि महाराज को संदेश भेजा 'आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना। हमारी ही तरह समाधि ग्रहण करना और सुयोग्य शिष्य को अपनां उत्तराधिकारी नियुक्त करना। जिससे परम्परा बराबर चले उन्होंने आचार्य पद भी वीरसागर महाराज को दे दिया उनके ये शब्द महत्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के थे कि वीरसागर को आशीर्वाद और कहें शांतभाव रखे शोक की जरूरत नहीं। आचार्य महाराज ने कुंथलगिरि में 14 अगस्त रविरार को नियम सल्लेखना का निश्चय किया उन्होंने यह सल्लेखना आठ दिन के लिए की थी। ता. 17 दिन बुधवार को उन्होंने यम सल्लेखना रूप प्रतिज्ञा ली उन्होंने इंगनीमरण किया, जिसमें कि क्षपक किसी से सेवा नहीं कराते सारी कियायें स्वयं करते हैं। सल्लेखना 36 दिन तक चली 20 अगस्त को केवल जल लिया फिर उपवास 23 को पुनः जल ग्रहण 24 को उपवास 25 से 28 ता. तक लगातार जल लिया पुनः 2, 3, 4 ता. को जल ग्रहण और इसी तरह चलते-चलते 35 दिन बीते अंत में 36वें दिन घड़ी में जब सुबह के 6.50 पर चारित्र चक्रवर्ती क्षपकराज ने स्वर्ग को प्रयाण किया समाधि के समय सर्वार्थ सिद्धि योग, अमृत सिद्धि योग, हस्त नक्षत्र, ब्रह्म योग भाद्रपद शुक्ला दोज सम्वत् 2012 नि. सम्वत् 2481, 18-9-1955 को कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर अपना नश्वर शरीर का त्याग किया।

उपसंहार–जिस प्रकार कुल की रक्षा पुत्र से होती है जिन्हें अपने कुल की रक्षा करने की चिंता होती है वे पुत्र उत्पन्न करते है उसे सद्‌गुणी भी बनाते हैं। इसी प्रकार जैन धर्म की कुल परम्परा मुनि धर्म से ही रक्षित रहती है मुनि ही समाज को सही मार्गदर्शन दे सकते हैं।

आचार्य श्री ने ऐसे भीषण दुषमकाल में जब कि मुनियों को बाहर नहीं निकलने दिया जाता था। कई-कई दिन आहार चर्या के बिना निकालने पड़ जाते थे, ऐसे समय में मुनि धर्म का लगभग लोप ही हो गया था तब आचार्य श्री ने आगे बढ़कर मुनिधर्म को चलाया आचार्य श्री का उपकार हम कोटि जिव्हाओं से भी नहीं कर पायेगे। उन्हीं का यह प्रसाद रूप आज हमें श्रमण संस्कृति के दर्शन हो रहे हैं।

आचार्य श्री का प्रभाव आज भी है, लोग इन साधु महाराज की तपस्या को आज भी याद करते हैं। इनके पुण्य के प्रभाव से खारे कुआँ का जल भी मीठा हो जाता था, सूखे वृक्ष हरे हो जाते थे एक बार बस आचार्य श्री किसी को मन से देख लेते तो उसके बिगड़े काम बन जाते।

महाराज का पूरा जीवन तपोमय था उन्होंने धर्म का सूर्य बनकर स्व तथा पर का प्रकाशन किया। वैसे भी यह कहावत प्रचलन में है कि गुरु के बिना ज्ञान हासिल नहीं किया जा सकता है अपने जीवन में गुरु की शरण तो लेनी ही पड़ेगी तभी हमें सही मार्गदर्शन मिल सकता है। आगम में भी स्पष्ट लिखा है कि पंचमकाल के अंत तक जैनधर्म तथा चतुर्विध संघ रहेगा। धर्म के बिना संसार नहीं रह सकता जिस दिन धर्म समाप्त उसी दिन संसार का अंत हो जायेगा। आचार्य श्री की ही देन है कि हमें आज भी एक नहीं दो नहीं हजारों साधुओं के दर्शन हो रहे हैं। समाज आचार्य श्री का ऋणी रहेगा।

*** W/o श्री राजकुमार जैन,**
राज इलेक्ट्रिकल,
निचला बाजार, शिवपुरी (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा का श्रमण संस्कृति को अवदान

- निकिता वैभव जैन*

आचार्यों का जो योगदान समाज एवं राष्ट्र को प्राप्त होता है, वह अतुलनीय है। उनके उपकारों की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। क्योंकि सांसारिक प्राणियों को संसार समुद्र से पार कराना, रत्नत्रय का दान देना, शिक्षा-दीक्षा देना यह सब आचार्य परमेष्ठी का ही उत्तरदायित्व होता है। इसीलिए संसारी प्राणियों को हस्तावलंबन देने वाले आचार्य परमेष्ठी ही शिष्यगण के लिए भगवान स्वरूप हैं। जो गंभीर हैं, दुर्धर्ष हैं, शूर हैं और धर्म की प्रभावना करने वाले हैं। भूमि, चन्द्र और समुद्र के गुणों के सदृश हैं ऐसे विशिष्ट गुणों से सम्पन्न इस शताब्दी के प्रमुख आचार्य, परमोपकारी, युग श्रेष्ठ, महापुरुष, चारित्र चक्रवर्ती 108 श्री शांतिसागर जी महाराज का जन्म कर्नाटक के बेलगांव जिले के चिकोड़ी तहसील के ''येलगुल'' गांव में सन् 1872 ई. में आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष में षष्ठी तिथि को हुआ। ''सातगौड़ा'' उनका जन्म नाम था। पिताश्री ''भीमगौड़ा'' का समाज में मानसम्मानपूर्ण स्थान था। वे धीर-वीर, गम्भीर सहज मनोवृत्ति वाले थे। माता ''सत्यवती'' स्वभाव से श्रद्धालु, धार्मिक और सदाचार सम्पन्न महिला थी।

आपकी लौकिक शिक्षा बहुत कम केवल तीसरी तक ही हुई। संस्कारशील माता-पिता के द्वारा घर में जो कुछ धार्मिक संस्कार प्रदान किये गये, वे ही जीवनाधार बन गये। आप एक प्रतिभावान व बुद्धिमान छात्र थे।

आपका विवाह 9 वर्ष की अल्पायु में जबरदस्ती कर दिया किन्तु 6 माह पश्चात् ही विवाहित पत्नी का स्वर्गवास हो गया अतः आप बाल ब्रह्मचारी जैसे रहे।

युवा होते-होते आपकी प्रवृत्ति धर्म में इतनी ओतप्रोत हो गयी कि आपने पुनः विवाह न करके ब्रह्मचारी ही रहने का संकल्प कर लिया।

आपमें आध्यात्मिक जीवन के प्रति नैसर्गिक आकर्षण था। आपका स्वाध्याय, विशेष रूप से तत्त्वचिन्तन, मनन में काल व्यतीत होता था। इसी से आपकी परिमार्जित तत्त्वदृष्टि स्पष्ट होती है। अर्थात् आपका प्रत्येक कदम वीतरागता की ओर था।

आपका सहज संवेगभाव और वैराग्य, संयमशील जीवन का आधार बन गया।

एक दिन वह भी आ गया जब आपने इकतालीस (41) साल में श्री देवेन्द्रकीर्ति मुनिराज से ज्येष्ठ शुक्ला 13, सन् 1914 में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके कुछ दिन बाद आपने अपने शरीर से दुपट्टा उतार कर ऐलक दीक्षा स्वीकार कर ली और पद-विहार करने की प्रतिज्ञा कर ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनः श्री देवेन्द्र कीर्ति जी मुनिवर से मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली तथा मुनिवर ने मुनिपद का नाम श्री ''शांति सागर'' रखा। ईसवीं सन् 1920 में फाल्गुन शुक्ला 14 उनकी दीक्षा तिथि थी।

मुनि दीक्षा के बाद आपके पास शिष्यों का आना प्रारम्भ हो गया और आपने शिष्यों को शिक्षा - दीक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। ''समडोली'' ग्राम में ही सर्वप्रथम आचार्य श्री का चतुःसंघ स्थापन हुआ। अब तक केवल एक महाराज ही निर्ग्रंथ साधु स्वरूप विहार करते थे। अब संघ सहित विहार होने लगा। संघ ने उनकों ''**आचार्य**'' घोषित किया। आचार्य श्री ने विहार के दौरान महत्त्वपूर्ण तीर्थरक्षा के कार्य किये हैं।

आचार्य श्री चलते-फिरते वीतरागता और विज्ञानता के विश्वविद्यालय थे। आपने श्री सम्मेदशिखर जी की ऐतिहासिक पावन यात्रा की। जो कि अविस्मरणीय एवं सातिशय रही।

सन् 1930 में आपने करुणाभाव प्रदर्शित कर संघ पर आक्रमण होने से बचाया।

आज जो तेरहपंथ या बीसपंथ के विकल्पों से आत्म साधना अत्यन्त दूर होती है, वह धर्म दृष्टि के अभाव का ही परिणाम है। पंथ के झगड़ों को दृढ़मूल बनाया जा रहा है, उन्हें धर्माचार का रूप दिया जा रहा है। उसकी उस प्रवृत्ति को रोकने हेतु, जो समाज के लिए महारोग के समान है, आचार्य श्री का सामंजस्यपूर्ण दूरदृष्टिता का व्यवहार एक अद्भुत कल्याणकारी अमृतोपम रसायन है।

आचार्य श्री की प्रहरी के समान सजग दिव्य दूर-दृष्टि थी। शास्त्र शुद्ध व्यापक दृष्टिकोण था।

श्री गजपंथाजी सिद्ध क्षेत्र पर समाज के विशाल जनसमुदाय ने आपको **चारित्र चक्रवर्ती** पद प्रदान कर समाज को गौरवान्वित किया। वास्तव में जिस प्रकार चक्रवर्ती 6 खण्डों को जीतकर षट्खंड पृथ्वी का शासक होता है। उसी प्रकार आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने पंचेन्द्रिय एवं मन इन छहों को वश में करके निष्कलंक चारित्र चक्रवर्ती यह सार्थक पद उनके लिए सुशोभित किया। इस शताब्दी में एक मात्र चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ही हुए है।

आपके कर-कमलों से आचार्य श्री 108 वीरसागरजी, श्री 108 नेमीसागरजी, श्री 108 वर्धमानसागरजी, श्री 108 देवसागरजी, श्री 108 आचार्य पायससागरजी, श्री 108 आचार्य कल्पचन्द्र सागरजी, श्री 108 नमिसागर जी, श्री 108 पदमसागरजी, श्री 108 आदिसागर जी, श्री 108 श्रुतसागर जी, श्री 108 कुन्थुसागरजी, श्री 108 आचार्य सुधर्मसागरजी, श्री 108 समंतभद्र जी दीक्षित हैं।

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के जीवन की अनेक विशेषताएँ हैं। श्रुत की टंकोत्कीर्ण सुरक्षा अर्थात् ग्रंथराजों की ताम्रपत्र में तथा कुछ प्रतियां कागज पर मुद्रित कराई। ''श्री 108 चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था द्वारा ग्रंथों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुरक्षा होती है। जैन वाङ्मय के सिद्धान्त ग्रंथ षट्खण्डागम, कषायप्रामृत, धवला, जयधवला का जीर्णोद्धार एवं प्रकाशन आपकी प्रेरणा का ही प्रतिफल है।''

कुंथलगिरि क्षेत्र पर बृहज्जिन-बिम्ब को भी आचार्य श्री की प्रेरणा द्वारा ही प्रतिष्ठापित कराया गया है। इसके अलावा दक्षिण से उत्तर तक मंगल विहार करके दिगम्बर मुनियों के लिए विहार का मार्ग प्रशस्त करना आपका ही कार्य है।

हरिजन मंदिर प्रवेश बिल को जैन मंदिरों हेतु कोर्ट द्वारा रद्द कराने का संकल्प करना, उसके लिए ढाई वर्ष तक अन्न का त्याग रखना और उस पर विजय प्राप्त करना आपकी दूरदर्शिता का परिचायक है।

आचार्य श्री ने लोगों के कल्याण हेतु ''बाल विवाह प्रतिबंधक कानून'' बनाने की प्रेरणा दी थी। आचार्य श्री ने कहा कि बालक-बालिकाओं का विवाह हो जाता है, लेकिन कभी किसी बालक के मरने पर बालिका विधवा हो जाती है और उसका भाग्य फूट जाता है। अतः यह उचित नहीं है। इसके प्रतिबंधन हेतु कानून तैयार करो।

पश्चात् यह ''बाल विवाह प्रतिबंधक कानून'' राजकीय सम्मान के साथ शस्त्रालंकृत घुड़सवारों द्वारा आचार्य श्री के हाथों में राजमुद्रा अंकित बंद पत्र के द्वारा पहुँचाया गया।

36 वर्ष के दीक्षित मुनि जीवन में लगभग 25 वर्ष तो आपने उपवास में ही व्यतीत किये और कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर सल्लेखना ग्रहण करते समय अंतिम अन्न का आहार अपने दिनांक 18.08.1955 को ग्रहण किया। पश्चात् 28.08.1955 को आपने जल का भी त्याग कर दिया। पश्चात् 28.08.1955 भाद्रपद शुक्ला दूज के दिन प्रातः 6.50 बजे **'ॐ सिद्धाय नमः'** उच्चारण के साथ आपने उत्कृष्ट वीरमरण को प्राप्त कर समाधि मरण का एक ज्वलंत उदाहरण आने वाली पीढ़ी के लिए प्रदान किया।

आचार्य शांतिसागर जी महाराज का जैन समाज, मुनि समाज एवं राष्ट्र के लिए एक महान उपकार है, जिसे युगों-युगों तक भुलाया नहीं जा सकेगा।

किसी महान व्यक्तित्व द्वारा समाज पर किये गये उपकारों को परम्परा पोषकों द्वारा संरक्षित रखना उनका नैतिक दायित्व होता है। समाज के प्रति सेवा करने वाला आदर्श व्यक्तित्व कभी अपने कर्तव्यों को स्वार्थ और मान की दृष्टि से नहीं करता अपितु उसके मन में समाज सुधार व समाज उत्थान की भावनाएं समाहित रहती है। ऐसे में कार्य करने वालों का समाज में विशेष स्थान होता है। ऐसे कर्मठ महापुरुषों का जन्म बड़े विरले योग के साथ होता है और जब वे इस धरती पर जन्म लेते है तो समाज को दीर्घकाल तक के लिए अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं और आने वाली पीढ़ी को भी उन महापुरुषों के क्रियाकलापों से परिचित होने का अवसर प्राप्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शांतिसागरजी ने मूलाचार ग्रंथ का अनेकों बार स्वाध्याय करके अपने को स्वयं मूलाचार मय बनाया गया। इस बीसवीं शताब्दी में मुनिचर्या को पुनः जाग्रत करने का श्रेय आपको ही है। वर्तमान में जितने भी साधुगण है। प्रायः सभी आपकी साधना एवं कृपा प्रासाद के फल है।

अपने पूर्वजों के उपकारों को याद रखने वाले श्रावक अपने कर्तव्यों का सही पालन करते हैं। जिनकी कृपा प्रसाद से समाज, संस्कृति, श्रमण संस्कृति (जैन धर्म) धर्म और वंश का संरक्षण और पोषण होता है उनके गुणों का गुणगान करना हमारा दायित्व है।

जैन समाज एवं धर्म के वर्तमान इतिहास पर यदि 'दृष्टिपात करें तो बीसवी सदी के प्रथम आचार्य के रूप में जन्में चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के समाज पर अनन्त उपकार हैं।

जैन आगम के परिप्रेक्ष्य में समाज को सुधारने हेतु आचार्य श्री द्वारा उठाये गये कदम अत्यंत साहसिक एवं आर्ष परम्परावादी रहे। आचार्य श्री ने जहां जैन धर्म और संस्कृति के वास्तविक पथ को पुनर्स्थापित किया वहीं उन्होंने समाज की कतिपय कुरीतियों पर भी अपना ध्यान आकर्षित कर उनके जड़मूल समापन का सफल प्रयास किया।

बेशक अंग्रेजों के शासन काल में आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज एक ऐसे जैन मुनि हुए जिन्होंने अपने दिगम्बरत्व से जैन धर्म की भी विश्वव्यापी पताका फहरायी और भविष्य के लिए इस धर्म की नींव अत्यन्त मजबूत बना दी।

वर्तमान में ऐसे उन महान एवं दूरगामी परिणामों का चिन्तन करने वाले आचार्य श्री की कृपा प्रसाद से सारे भारत वर्ष में लगभग 1500 दिगम्बर जैन साधु साध्वीगण उपस्थित है, जो जिनधर्म की महती प्रभावना कर रहे हैं और आने वाली अनेक शताब्दियों तक इस परम्परा के माध्यम से जैन धर्म की कीर्ति दिग्दिंगत व्यापी बनी रहेगी। विच्छिन्न होती दिगम्बर जैन संत परम्परा को आगमानुकूल करके आचार्य श्री ने समाज पर सबसे बड़ा उपकार किया है। क्योंकि साधुओं के बिना यह समाज अनाथ बालक की तरह अपने धर्म की राह से भटक सकता है। आज उन्हीं के उपकारों से समाज में साधुओं एवं श्रावकों को जैन आगम के अनुकूल अपनी चर्या करने का अवलम्बन प्राप्त हुआ है।

परम पूज्य प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती 108 श्री शांतिसागरजी महाराज का जीवन महान रहा है। वे 20वीं शताब्दी में चारित्र मार्ग के पथ प्रदर्शक रहे है। उन्हीं की कृपा से आज इतनी संख्या में दिगम्बर साधु चारित्र पथ के अनुगामी बनकर यत्र-तत्र-सर्वत्र मंगल विहार करते दिखाई दे रहे हैं। शिष्य-प्रतिशिष्य तथा प्रप्रतिशिष्य की परम्परा आज चल रही है।

हमें आचार्य श्री के उपकारों को समाज के बीच में याद करते रहना चाहिए। हमें आचार्य श्री के जीवन पर आधारित संगोष्ठी, प्रश्नमंच, नाटिका, चित्रकला प्रदर्शनी, भाषण प्रतियोगिता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निबंध प्रतियोगिता आदि आयोजित करना चाहिए। जिस प्रकार परम पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा उनके उपकारों की याद में वर्तमान में समाज के माध्यम से 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाया जा रहा है, जो कि 11 जून 2010 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में देश के वरिष्ठजनों द्वारा विद्वानों की उपस्थिति में ज्ञान ज्योति विद्वत प्रशिक्षण शिविर' के समय उद्घाटित किया गया, जिससे कि बच्चे-बच्चे को शांतिसागरजी के जीवन वृत्त से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

वर्तमान में आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की कृपा से ही हमारी श्रमण संस्कृति के साधक मुनिगण विद्यमान हैं। उनका जीवन पथ प्रदर्शक के रूप में था। अतः हमें भी उनके जीवन का उनके गुणों का अनुसरण करना चाहिए जिससे कि हमारा नर भव जो कि बड़ी कठिनता से मिला है वह भी उच्च कुल, जैन कुल में जिसमें तप, त्याग, संयम का पालन कर रत्नत्रय या मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

समस्त जैन समाज इस बीसवी शताब्दी के प्रभावक आचार्य चारित्र चक्रवर्ती 108 श्री शांतिसागरजी महाराज के किंचित गुणों को अपने जीवन में लाने का प्रयास करें। इसी में मानव जीवन की सार्थकता होगी।

अंत में आचार्य श्री को हम परोक्ष रूप से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए वीर प्रभु से यही कामना करते हैं कि आपकी आचार्य परम्परा निष्कलंक रूप से आगे बढ़ती रहे जिससे सभी संसारी प्राणियों को आचार्यों, भगवन्तों का आशीर्वाद हमेशा प्राप्त होता रहे।

* जम्बूद्वीप ज्वैलर्स,
सनावद,
जिला-खरगोन (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे थे हमारे आचार्य भगवान्

महान महात्म्य है जिनका, चारित्र उनका हम देखें ।
यही बोध है हम सबको, उनके सम भी हम होवे ॥

– अल्पना जैन*

प्रस्तावना – चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जैसे उत्तुंग एवं गंभीर व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बांधना अर्थात् निबद्ध करना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार हिमालय पर्वत की ऊँचाई, नील नदी की लंबाई और प्रशांत महासागर की गहराई का अनुमान लगाना कठिन होता है। बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य के रूप में जैन समाज ने जिस सूर्य का प्रकाश प्राप्त किया उसने सम्पूर्ण धरा का अंधकार समाप्त कर एक बार फिर से भगवान महावीर के युग का स्मरण कराया था।

जीवन परिचय – आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व भारत की इस वसुधा पर जैन मुनियों के दर्शन बहुत ही दुर्लभ थे। कतिपय साधु ही आत्मा कल्याण करते देखे जाते थे। ऐसी परिस्थिति में पुनीत दक्षिण भारत के बेलगांव जिले को नररत्न आचार्य शांतिसागर महाराज की जन्म भूमि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भोजग्राम के समीप लगभग चार मील दूरी पर विद्यमान ग्राम येलगुल में आषाढ़ कृष्णा 6 के दिन सन् 1872 में बुधवार की रात्रि को इनका जन्म हुआ था। उस ग्राम में महाराज के मामा रहते थे। अर्थात् उनका जन्म उनके नानाजी के यहां हुआ था। इनके जन्म द्वारा मातुल गृह पवित्र हुआ था। इनका जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था। पिताजी भीमगौड़ा पाटिल थे। जननी कहलाने का पुण्य माता सत्यवती को प्राप्त हुआ था। इनकी जाति चतुर्थ जैन थी जिसमें अनेक दीक्षाधारी महापुरुषों का जन्म हुआ था। जिनसेन आचार्यश्री चतुर्थ जाति के थे। जिस चतुर्थ जाति में महाराज का जन्म हुआ उसमें बड़े-बड़े प्रभावशाली रत्नत्रयधारी तथा वीतरागी शासन के प्रभावक नररत्न हुए है।

इनके आदिगौंड़ा, देवगौंड़ा ये दो ज्येष्ठ बंधु थे। कुंभगौंड़ा अनुज थे। बहिन का नाम कृष्णाबाई था। इनके पिता शांत भावों के अनुरूप इन्हें सातगौंड़ा कहते थे। गौड़ा शब्द भूमिपति पाटील का द्योतक है। ये तृतीय पुत्र थे। इसी से मानो प्रकृति ने इन्हें रत्नत्रय और तृतीय रत्न सम्यक चारित्र का अनुपम आराधक बनाया। आचार्य श्री प्रारंभ से ही असाधारण गुणों के भंडार थे। इनकी स्मरण शक्ति जनसाधारण में प्रख्यात थी। बचपन से ही इनके चिहन इस प्रकार के थे कि ये लोकोत्तर महापुरुष बनेंगे। इनका शरीर निरोग सुदृढ़ शक्ति सम्पन्न था। इनकी ऐसी कोई चेष्ठा नहीं होती जिसे बालक समझकर क्षमा किया जाये। ये विवेक के पुंज थे। जिस कार्य में हाथ डालते थे उसमें प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त करते थे।

इनका गृह सदैव बड़े महात्माओं, सत्पुरुषों और उज्ञवल व्यक्तियों के चरण रज से पवित्र हुआ करता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माता की धर्मपरायणता : आचार्य श्री के जीवन में उनकी माता-पिता की धार्मिकता का बड़ा प्रभाव था। सन् 1948 के दशलक्षण पर्व में फलटण नगर में उन्होंने बताया था कि हमारी माता अत्यधिक धार्मिक थी। वह अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास करती थी तथा साधुओं को आहार दान देती थी। वे भी बचपन से ही आहार देने में सहयोग दिया करते थे। छोटी अवस्था से ही उनके मन में मुनि बनने की लालसा थी।

पिता ने 16 वर्ष पर्यन्त एक बार भोजन पानी के नियम का निर्वाह किया। 16 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत रखा। उन जैसे धर्मानुराधनापूर्वक समाधिमरण मुनियों को भी कठिन है। उनकी माता का समाधिमरण 12 घंटे में हो गया था। ऐसे धार्मिक परिवार में ऐसे विश्व दीपक अनुपम नररत्न का जन्म हुआ था।

'यह बात सत्य है कि पूत के गुण पालने में ही दिख जाते हैं।

बालयोगी जीवन – आचार्य श्री को चारित्र का चक्रवर्ती बनना था। इसलिये उनके बाल्य जीवन में विकृतियों पर विजय की तैयारी दिखती। ये बालयोगी सरीखे दिखते थे। भोजग्राम में जो शिक्षण उपलब्ध था। वो इन्होंने प्राप्त किया। उनकी मुख्य शिक्षा वीतराग मुनियों द्वारा रचे गये रत्नत्रय वैभव बताने वाले शास्त्रों के स्वाध्याय रूप थी। उनका व्यावहारिक ज्ञान इतना अहम था कि सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रश्नों का समाधान तुरंत करते थे।

अपने सद्गुणों के कारण चारित्र नायक सर्वप्रिय थे। जब 9 वर्ष के हुए तब माता-पिता ने 6 वर्ष की कन्या से विवाह कर दिया। देवयोग से 6 माह बाद उस कन्या का मरण हो गया। आचार्यश्री ने उसे कभी अपनी स्त्री के रूप में नहीं माना जब आचार्यश्री 18 वर्ष के हुए तब माता-पिता ने फिर विवाह की चर्चा चलाई। इन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट कि पुनः आग्रह करने पर इन्होंने कहा यदि पुनः हमें इस गृह जाल से फंसने को दबाया तो हम मुनि दीक्षा ले लेंगे। इस भय से पुनः आग्रह नहीं किया गया।

इस प्रकार पूज्यश्री बाल्य जीवन से ही निर्दोष ब्रह्मचर्य का पालन करते आ रहे थे।

वीतराग प्रवृत्ति – पूज्य श्री प्रारंभ से ही वीतराग प्रकृति वाले थे। घर में बहिन की शादी में या कुम्भगौड़ा की शादी में शामिल नहीं हुए थे। इनकी स्मरण शक्ति सबको चकित करती थी। कभी प्रमाद नहीं करते। अध्यापक इनके क्षयोपशम की हमेशा प्रशंसा करते थे। बचपन से ये माता-पिता के साथ मंदिर जाया करते थे। वे हमेशा शास्त्र पढ़ते हुए पाए जाते थे। ध्यान करने की पहले से रुचि थी। स्वाध्याय प्रेमी इनके पास आकर चर्चा करते थे। इनके उपदेश से कई लोगों ने रात्रि भोजन का त्याग कर दिया और पानी भी छान कर पीने लगे। उन लोगों में जैनी, अजैनी बहुत लोगों ने नियम लिया। वेदांत प्रेमी रुदप्पा इनके उपदेश से उपवास करने लगा। **'जैन धर्म यथार्थ है'** प्लेग से ग्रसित होने के कारण महाराज ने उसे जिन धर्म का उपदेश दिया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनियों पर महाराज की बड़ी भक्ति रहती थी। एक मुनिराज को वे कंधे पर बैठाकर वेदगंगा तथा दूध गंगा के संगम के पार ले गये थे। वे रात एवं दिनभर शास्त्र पढ़ने में तत्पर रहते थे। और पढ़कर सारी बातें स्मृति के बल पर बोलते थे। इनके घर में मुनियों को आहार देने योग्य भोजन सदा बनता था। बस्ती में मुनियों के आगमन पर महाराज माता को आकर कहते -

'आजी बाई' महराज आले। वे कहती थी - **इथे घोऊन** या बाबा उन्हें यहां ले आओ।

जब महाराज ने भोज से लगभग 20 मील की दूरी पर स्थित उत्तुर ग्राम में क्षुल्लक दीक्षा ली तब दूसरे दिन लोगों ने जाकर कहा महाराज आपने हमसे दीक्षा की कोई बात नहीं की। दीक्षा लेने की बोलना ही चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है। हमारे वैराग्य के परिणाम तो पहले से थे, एक आसान पर बैठकर घंटों तत्त्व चर्चा करते थे मार्ग में हजारों लोग दर्शन को आते इन्होंने उन लोगों को मांस- मदिरा का त्याग कराया था।

दयाधर्म - इनकी तपोमय वाणी से अगणित लोगों ने दयाधर्म के पथ में प्रवृत्ति की थी। महाराज की तपश्चर्या अद्‌भुत थी। कोगनाली में लगभग 8 फीट लंबा स्थूल काया वाला सर्पराज उनके शरीर में दो घंटे पर्यंत लिपटा रहा। वह सर्प भीषण होने के साथ-साथ ही अधिक वजनदार था। महाराज का शरीर भी बलशाली था। इससे वे उसके भारी बोझ को धारण कर सके। शेर आदि का उनके पास प्रेमभाव से निवास था।

गोभाक के पास कोन्नूर की गुफा में सर्प ने आकर इन पर उपसर्ग किया था। किन्तु ये मुनिराज अपने स्वभाव से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

न होते सूर्य और चंदा, न ज्योतिष मंत्र ये होते।
नहीं ब्रह्माण्ड ये होता, न भौतिक यंत्र ये होते॥
समंदर सूख ही जाता, जमाना जल चुका होता।
अगर धरती पर इन जैसे दिगम्बर संत न होते॥

करुणा भाव - आचार्य महाराज शिखरजी की वंदना को लगभग 32 वर्ष की अवस्था में गये थे। आचार्य श्री जब पर्वत पर चढ़ रहे थे। उनकी करुणा पूर्ण दृष्टि एक वृद्ध माता पर पड़ी जो प्रयत्न करने पर भी आगे बढ़ने में असमर्थ हो गई थी। पैसे के अभाव में डोली नहीं कर सकती थी। उस माता को देखकर इन महाराज श्री के मन में वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने माता को धैर्य बंधाया और अपनी पीठ पर उनको बैठाकर पर्वत राज की कठिन वंदना करा दी।

ऐसे ही एक पुरुष अत्यधिक थक गया था और उसके पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। उस पहाड़ी पर चढ़ते समय बलवान आदमी भी थकान तथा कठिनता का अनुभव करता है। किन्तु महाराज ने उस पुरुष को भी पीठ पर बैठाकर वंदना करा दी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराज जब बोलते थे तब श्रोताओं की इच्छा यही होती थी कि इनके मुख से अमृतवाणी का प्रवाह बहता ही रहे और अपने कानों से उसे सुनते रहे।

इनके चरण जहां पड़ते, वह धरती तीरथ बन जाती।

जंगल में मंगल होता, धर्मामृत धारा बह जाती।

जब महाराज 41 वर्ष के हुए तब कर्नाटक प्रांत के उत्तूर ग्राम के मुनिराज देवप्पा स्वामी (देवेन्द्र कीर्ति) महाराज पधारे उनके समीप पहुंचकर महाराज ने कहा - महाराज मुझे निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिये। महाराज ने कहा यह पद कठिन हैं, इसमें महान संकट आते हैं, मन विचलित हो जाता हैं।

भगवन्! आपके आशीर्वाद और जिनधर्म के प्रसाद से इस पद का निर्दोष पालन करूंगा। प्राणों को छोड़ दूँगा पर प्रतिज्ञा में दोष न आने दूंगा। मुझे महाव्रत देकर कृतार्थ कीजिये।

शांत एकान्त – महाराज शांत स्वभाव वाले एवं एकान्त प्रिय थे। व्यर्थ की बातें नहीं करते, शास्त्र चर्चा हेतु लोगों के पास बैठते थे। इनके वचनों पर सभी को अपार विश्वास था। लोग इन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। इनकी वाणी में विशेष आकर्षण और मार्मिकता पाई जाती थी। वे ऐसी बात करते थे कि सभी लोगों को मान्य होती थी। दीन-दुःखी पशु-पक्षी आदि पर उनकी करुणा धारा बहती थी।

जहां भैंसे, बकरे आदि मारे जाते थे वहां पहुंचकर अपने प्रभावशाली उपदेश द्वारा जीव वध को बंद कराते थे। इससे लोग इनको 'अहिंसा वीर' कहते थे। वे दयासागर होने के साथ प्रेम मूर्ति थे। वे सर्प आदि भीषण जंतुओं को प्रेम करते थे। इनका कहना था। ये प्राणी बिना सताये कभी कष्ट नहीं देते।

उपसर्ग विजेता – मेंढक की प्राण रक्षा : एक दिन महाराज शौच को बाहर गये। लौटते में टूटा लौटा देखकर घर वालों ने पूछा ये लौटा कैसे टूटा तब उन्होंने बताया कि एक सर्फ एक मेंढक को खाने जा रहा था। उस समय एक मेंढक कि प्राण रक्षा के लिये तत्काल इस लोटे को पत्थर पर जोर से पटक दिया इससे वह सांप भाग गया।

साधु रूप हरि आप को, पावन परम पुरान।

हर लेते दुःख जीव को, सबका करते कल्याण।

सर्पराज विजेताः एक दिन की बात है वे गुफा में घुसे उनके पीछे ही एक सर्प गुफा में चला गया वह बड़ा चंचल सांप था। उड़ान भरने वाला था। जब तक लोगों ने इसे देखा और महाराज के पास पहुंचे तब तक वह महाराज के जांघों के बीच में घुस जाता, लोगों के दूर होते ही वह उपद्रव करने लगता। वह कहते थे - **'समता सर्व भूतेषु'** मेरा किसी के भी साथ कोई वैरभाव नहीं है। **'वैरं मज्झं ण केणवि'**, मेरा सर्व जीवों के प्रति मैत्री भाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराज वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धांत को स्वीकार कर चुके थे। एक दिन महाराज ध्यान कर रहे थे। इतने में सात हाथ लम्बा और मोटा एक सर्प आया उसके शरीर पर बाल थे। वह आया और महाराज के सामने आकर खड़ा हो गया। उसके नेत्र लालरंग के थे वह महाराज पर दृष्टि डालता और जीभ निकालकर लपलप करता था। उसके मुख से अग्नि के कण निकलते थे। वह बहुत देर तक महाराज के सिर और नेत्रों के आगे खड़ा होकर देखता था। वे भी उसको देखते थे। कुछ काल बाद वह सर्पराज महाराज को सौम्य और धैर्य की मूर्ति तथा शांति का सिंधु देखकर अपना फण नीचा करके चला गया।

अन्य बाधायें – महाराज जी का कहना था कि शास्त्रानुसार विधि से यदि कोई पड़गाह कर आहार कराता है तो ही आहार करेंगे। वो कहते थे कि शास्त्रानुसार आहार नहीं बना तो हम उपवास करते हुए समाधिमरण को प्राप्त करेंगे। किन्तु आगम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। इस प्रकार दो तीन वर्ष तक इनके जीवन में अवर्णनीय बाधाएं आती रही। परंतु ये शांति के सागर ही रहे। **आज तो संयम रूपी अमृत के कलश को फोड़कर फेकने वाला विषय विशेष की प्याली पिलाने वाला पुरुष ही मस्तक पर सुधारक के मुकुट को धारण करता है।**

एक बार नेमिनाथ भगवान के पदरज से पुनीत गिरनार पर्वत पर पहुंचे। नेमिनाथ भगवान के निर्वाण स्थान की स्थायी स्मृति स्वरूप उनके दीक्षा लेने का विचार किया। महापुरुष जो विचारते हैं तदनुसार आचरण भी करते हैं। महाराज यरनाल गये वहां पंचकल्याणक चल रहा था। वहां मुनि देवेन्द्र कीर्ति महाराज पधारे थे। महाराज ने उनके समीप जाकर प्रार्थना की भगवन आपकी आज्ञानुसार मैंने व्रतों का पालन किया। अब प्रार्थना है कि मनुष्य जन्म की उत्कृष्ट निधि निर्ग्रन्थ दीक्षा देकर मेरे जन्म को कृतार्थ करें। देवेन्द्र कीर्ति महाराज ने कहा – **परीषहों का प्रचंड प्रहार परिणामों को विचलित कर आत्मा को हिला देता है। यदि निर्ग्रन्थ पद लेकर निर्दोष रीति से पालन न किया तो जीव गिरकर नीच पद प्राप्त करता है।**

अंत में दीक्षा देने का निश्चय हो गया। दीक्षा देने का श्रेष्ठ योग भी सटीक था। पंचकल्याणक में भगवान को वैराग्य आया, भगवान पालकी में विराजमान होकर दीक्षावन पहुंचे ऐसे उत्कृष्ट अवसर पर ऐलकजी ने निर्ग्रन्थ रूप धारण किया और केशलोंच आरंभ कर दिया। अब ऐलक मुनि शांतिसागर बन गये। गुरुदेव ने इनका नाम इनके गुणों को देखकर रखा था।

शांति के सागर में प्रेम और माधुर्य का जल भरा है। इसमें तनिक भी खारापन नहीं है। यहां के छोटे-छोटे जीवों को अभय मिलता है। दीक्षा के बाद यरनाल में दूषित जल हो जाने से बीमारी फैल गई उस रोग से महाराज का शरीर आक्रांत हो गया। श्रावकों ने नसलापुर लाकर सेवा की एक माह के ज्वर ने शरीर को अत्यधिक क्षीण कर दिया। आहार चर्या को भी नहीं जाते फिर भी ये धर्म ध्यान में प्रवीण रहे। इनका धैर्य अपार था। ये शांत भाव से बड़े-बड़े संकटों को सहन करते और सोचते थे, जब तक कर्म उदय है तब तक फल भोगना हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराज कोगनोली की गुफा में रहते थे। सबेरे योग्य काल में आहार के लिये निकलते थे। कोगनोली में चातुर्मास के बाद निर्ग्रन्थ रूप में दूसरा चातुर्मास नसलापुर में हुआ वहां एक दिन श्रावक ने महाराज का पड़गाहन कर लिया और घर में भोजन बना ही नहीं। तब उन्होंने महाराज के आहार तथा अपनी निन्दा से बचने के लिये अपने बाजू वाले के यहां से भोजन सामग्री ली और आहार कराया। आहार के बाद मुनिराज को पता चला कि आज का आहार ग्रहण करने योग्य नहीं था। उसने उसमें श्रावक को दोषी न मानकर अपने आप को दोषी माना और प्रायश्चित लिया और सूर्य की प्रचंड किरणों से संतप्त शिला पर जाकर ध्यान करना प्रारंभ कर दिया। उस समय ऊष्णता की भीषण स्थिति हो रही थी।

सुखहि सरोवर जल भरें सुखहिं तरंगिनी वोय।

बाटह वटोही ना चले, जंह धाम गरमी होय ॥

तंहकाल मुनिवर तपत नहीं, गिरि शिखर ठाड़े धीर।

ते साधु मेरे उर वसों, मम हरहु पातक पीर ॥

इनका तपश्चरण चतुर्थकालीन मुनियों के समान था। ऊष्णता के समय में अपने नाम के अनुरूप शांत रहे और मानो साक्षात सागर में ही निमग्न रहे। परंतु इस उष्ण परीषह का परिणाम व्यथा जनक हो गया उन्होंने आठ दिन के लिये दूध के अलावा सर्व प्रकार के आहार का त्याग कर प्रत्येक स्थिति में वीतरागता का संतुलन बनाये रखते थे।

धर्मयुग प्रवर्तक संत – इस एक पवित्र आत्मा ने प्रहरी की भांति भव्यात्माओं को जगाना आरंभ किया। जिसके कारण पंचम काल रूपी शासन में भी भव्य जीव अपने रत्नत्रय को सम्हालते हुए मुक्ति पुरी की ओर बढ़ते हुए देखे जा रहे थे।

आचार्य महाराज इस युग में आश्चर्यप्रद विभूति प्राप्त होते थे। लोग कहते यह कलिकाल है। लेकिन महाराज जहां जहां जाते वहां वहां धार्मिकता में वृद्धि देखकर ऐसा लगता था मानो चतुर्थ काल उस जगह छुपा था। जो महाराज के आते ही व्यक्त रूप में प्रकट हो गया।

भोग का रोगी मुनियों की महत्ता नहीं समझ पाते–आज का जगत यथार्थ के ज्वालामुखी के मुख पर बैठा है। एक चिंगारी कहीं पहुंची की विस्फोट द्वारा प्रलय का दृश्य प्रस्तुत होने में देर नहीं लगती। ये भोग के रोगी स्वस्थ संतों और संस्कृति के सत्य स्वरूप को अपनी मलिन दृष्टिवश निर्दोष रूप से देख ही नहीं पाते।

जैन धर्म घटती का कारण – दिगम्बर जैन धर्म कठिन हैं आज के लोग ऐहिय सुखों की ओर झुकते हैं। मोक्ष की चिंता किसी को नहीं हैं। सरल मार्ग पर सब चलते हैं। जैन धर्म की क्रियाएं कठिन हैं। इसी कारण दिगम्बर साधु कम हैं। दिगम्बर साधु प्राण जाने पर भी मर्यादा का पालन करते हैं। यदि धूप के कारण बिना जल ग्रहण किये मर गये तो परवाह नहीं। परंतु पानी नहीं पियेगे। वह संयम का पूर्ण रक्षण करेगें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म चर्चा –

एक दिन महाराज ने कहा जो मुनि कमण्डलु की टोटी आगे करके चलते हैं वह अयोग्य हैं। महाराज की भक्ति सिद्ध भूमि पर अधिक है। जब महाराज ने 1955 में सल्लेखना ली तब वे ॐ सिद्धाय नमः का जाप करते थे। सल्लेखना के 365वें दिन वे स्वर्ग प्रयाण के पूर्व भी उनके मुख से ॐ सिद्धाय नमः शब्द निकले। महाराज श्री रात में एक बजे से सात बजे तक जाप करते थे। मध्यान्ह के तीन घंटे तथा सायंकाल तीन घंटे जाप करते थे।

आचार्य के महाप्रयाण की साधना के ऐतिहासिक छत्तीस दिन –

1. 14 अगस्त, नियम सल्लेखना की घोषणा करने के बाद आचार्यश्री शांत मुद्रा में ।

   14 अगस्त 1955 में आचार्य श्री ने प्रातः नौ बजे बादाम का पानी ग्रहण किया और तदन्तर उपस्थित जनता के सम्मुख एक सप्ताह की नियम सल्लेखना धारण करने की घोषणा की।

2. 15 अगस्त, महाराज ने जल नहीं लिया। मध्यान्होपरांत तीन बजे शांतिसागर दिगम्बर जैन मंदिर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, मुम्बई की ओर से ताम्र पत्रों पर उत्कीर्ण श्री धवल, जयधवल एवं महाधवल सिद्धांत ग्रंथ आचार्य को समर्पित किये गये। महाराज की आज्ञानुसार फलटण (महा.) द्वारा प्रकाशित रत्नकरण्ड श्रावकाचार महाराज को भेंट किया गया।
3. 16 अगस्त, महाराज ने आज भी जल नहीं लिया।
4. 17 अगस्त, महाराज ने आज दिन में तीन बजे सिर्फ जल को छोड़कर आमरण सल्लेखना ग्रहण की।
5. 18 अगस्त को भी जल ग्रहण नहीं किया। सारा दिन आत्म ध्यान में व्यतीत किया।
6. 19 अगस्त का दिन भी महाराज ने चिंतन, मनन एवं ध्यान में व्यतीत किया।
7. 20 अगस्त, आज भी जल ग्रहण नहीं किया और कमजोरी के कारण सिर में दर्द हो गया।
8. 21 अगस्त को विशेष बात यह हुई कि आचार्य श्री के भतीजे जिनगौड़ा ने आचार्यश्री से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।
9. 22 अगस्त को श्री शांतिसागर जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था के मंत्री श्री बालचंद्र शहा को श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक की अध्यक्षता में मानपत्र भेंट किया गया।
10. 23 अगस्त को जल ग्रहण किया। दोनों समय जनता को दर्शन देकर कृतकृत्य किया।
11. 24 अगस्त, आज के दिन अपने प्रथम शिष्य श्री 108 श्री वीरसागरजी महाराज को आचार्य घोषित किया!।
12. 25 अगस्त को भी जल ग्रहण किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

13. 26 अगस्त के दिन आचार्यश्री ने क्षमा भाव ग्रहण किया और कहा कि वे सब पुरानी बातों को भूल गये हैं व चाहते हैं कि प्राणीमात्र उनको क्षमा करें।
14. 27 अगस्त को महाराज ने कहा मैं स्वयं जागृत हूँ, मैंने इंगिनीमरण संन्यास लिया है। मुझे किसी की अपेक्षा नहीं है। अपनी आत्मा के ध्यान में ही मग्न रहता हूँ।
15. 28 अगस्त, जल ग्रहण किया।
16. 29 अगस्त, आज जल ग्रहण नहीं किया।
17. 30 अगस्त, आज जल ग्रहण न करने का दूसरा दिन था।
18. 31 अगस्त, आज जल ग्रहण न करने का तीसरा दिन था।
19. 1 सितम्बर, आज जल ग्रहण न करने का चौथा दिन था।
20. 2 सितम्बर, चार दिन बाद जल ग्रहण किया था।
21. 3 सितम्बर, जल ग्रहण किया और 5 मिनिट के लिए आचार्यश्री गुफा से बाहर आये।
22. 4 सितम्बर, अशक्ति बढ़ जाने के कारण बहुत कम जल लिया और बैठ गये।
23. 5 सितम्बर, आज सल्लेखना का 23वां दिन था। अशक्ति बढ़ती जाती है। फलतः खड़े होने और बैठने में भी सहारा लेना पड़ा।
24. 6 सितम्बर, दोनों समय जनता को दर्शन देकर तृप्त किया।
25. 7 सितम्बर, सल्लेखना का 25वां दिन था। कमजोरी बहुत बढ़ गयी थी और चक्कर भी आने लगे थे।
26. 8 सितम्बर, अकिवार से मुनिश्री पिहितास्रवजी भी आ गये।
27. 9 सितम्बर, जल न ग्रहण करने का पांचवा दिन था।
28. 10 सितम्बर, अशक्ता बहुत ज्यादा थी। तब भी अभिषेक के समय आचार्यश्री पधारे।
29. 11 सितम्बर - अशक्ता अधिक बढ़ने के कारण जनता दोनों समय आचार्यश्री के दर्शन नहीं कर पाई।
30. 12 सितम्बर, जल न ग्रहण करने का आठवाँ दिन था और आचार्यश्री की हालत चिंताजनक रही।
31. 13 सितम्बर, नाड़ी की गति अत्यंत मंद होने पर भी सारा समय गुफा में आत्मध्यान में व्यतीत किया।
32. 14 सितम्बर, जल ग्रहण न करने का 10वां दिन हो जाने पर भी आचार्यश्री की आत्म साधना और ध्यान बराबर रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

33. 15 सितम्बर, आचार्यश्री की नाड़ी की गति की रफ्तार भी धीमी गति से चल रही थी।

34. 16 सितम्बर, जल न ग्रहण करने का 12वां दिन और आज के दिन आचार्यश्री की हालत बहुत ही नाजुक थी।

35. 17 सितम्बर, सल्लेखना का 35वां दिन था। आचार्यश्री को गुफा में लेटा दिया गया।

36. 18 सितम्बर, आचार्यश्री की सल्लेखना का अंतिम दिन और उनकी लोक की जीवन लीला का अंतिम दिन था।

आचार्यश्री जागृत अवस्था में **ॐ सिद्धोऽहं** का ध्यान करते रहे। 6 बजे गंधोदक ले जाकर क्षुल्लकसागरजी ने कहा, महाराज अभिषेक का जल है। महाराज ने हूँ में उत्तर दिया और गंधोदक लगा दिया गया। महाराज **ॐ सिद्धोऽहं** का ध्यान करते हुए प्रातः 6.50 पर स्वर्गवासी हो गये।

निष्कर्ष– आज के इस वर्तमान समय में आचार्य शांतिसागर मुनि जैसे महान व्यक्तित्व का दर्शन पाना असम्भव है। उनके जैसे उपसर्ग विजेता कतिपय ही देखे जाते हैं। आज मिथ्यात्व के प्रचार का सर्वत्र जोर देखा जा रहा है। सत्पथ का प्रतिपादन करने वाले समर्थ पुरुष मिलते ही कहाँ हैं। सम्यक्त्व के प्रसार से पूज्यश्री के वात्सल्य, स्थितिकरण, उपगूहन तथा प्रभावना रूप सम्यक्त्व के आगे की विशुद्धता होती है। महाराज का कहना था कि शास्त्रानुसार विधि से यदि कोई पड़गाह कर आहार कराता है तो ही आहार करेंगे और अगर शास्त्रानुसार भोजन नहीं बना तो हम उपवास करते हुए समाधिमरण को प्राप्त करेंगे। किन्तु आगम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। समडोली में शांतिसागर जी जो श्रमण संघ का निर्माण किया था। उसके कारण चतुःसंघ समुदाय ने उन्हें आचार्य परमेष्ठि के रूप में पूजना प्रारम्भ कर दिया था।

मूलाचार में लिखा है– जो निर्ग्रन्थ मुनि, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, तप और चारित्र रूप, पंच आचारों का निरतिचार पालन करता है तथा दूसरों को कराता है तथा उनको उपदेश देता है उसे आचार्य कहते हैं।

आचार्य वीरसेन स्वामी ने लिखा जो आचारांग के धारक हो, शास्त्रों तथा जिनागम में पारंगत हो, मेरु के समान निश्छल हो, पृथ्वी के समान सहनशील हो तथा सागर के समान मल दोषों को दूर करने वाले हों तथा सम प्रकार के मलों से रहित हो वे आचार्य हैं।

मुनि श्री शांतिसागर ने धर्म की गंगा बहाकर पुण्य-तीर्थ का निर्माण कर संसार का पूज्य आचार्य पद प्राप्त किया।

* D/o श्री कमलकुमार जैन,
ग्राम – लार,
जिला – टीकमगढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र चक्रवर्ती श्री शांति सागर महाराज की परम्परा का श्रमण संस्कृति को अवदान (योगदान)

– परिधि जैन*

शरणागत के शरण प्रदाता, निरीह तक सम उपकारी,
नियमित उद्यम में रत रहता, रवि शशि सम है तम हारी ॥
सिंहवृत्ति का धारक भी है, संग रहित है हवा समा।
योगों में अचल मेरु हैं, धरा बना है धार क्षमा ॥

सच्चे साधु का स्वरूप व्यक्त करती हुई ये पंक्तियां हृदय को छू लेती हैं। श्रमण या जैन संस्कृति का शाब्दिक अर्थ होता है, जो अपनी विकृतियों को विनष्ट करने के लिये श्रम कर रहा है, वह श्रमण कहलाता है। श्रमण संस्कृति में 'नमोस्तु शासन' लाने का श्रेय आचार्य श्री शांति सागरजी को है। श्रमण जगत में महामुनींद्र चारित्र चक्रवर्ती, आचार्य शांतिसागरजी महाराज का सर्वोपरि स्थान रहा है। उन्होंने अपने तप, त्याग, संयम पालन द्वारा मुनिमार्ग को आगमोक्त बनाया। वर्तमान में आज जो हमारी श्रमण संस्कृति के साधक मुनिगण विद्यमान हैं वे उन्हीं ऋषिराज की कृपा से हैं।

संसार का उद्धार करने वाले महापुरुष जब माता के गर्भ में आते हैं, तब कुछ शुभ-शकुन व मंगल स्वप्न आदि का दर्शन माता को होता है। आचार्य श्री के गर्भ में आने पर माता को दोहला हुआ था कि एक सौ आठ सहस्र दल वाले कमलों से श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करूं। कोल्हापुर के समीप के तालाब से वे कमल विशेष प्रबंध तथा व्यय द्वारा लाये गये और भगवान की बड़ी भक्तिपूर्वक पूजा की गई। 108 सहस्र दल द्वारा की गई जिनेन्द्र देव की पूजा आचार्य श्री के 108 गुणों से की गई और सारा संसार आज उन्हीं के गुणों की पूजा कर रहा है।

जो व्यक्ति यह सोचता है कि आज चतुर्थ कालीन मुनियों के समान कठोर तपस्वी जीवन व्यतीत करना अशक्य होने के कारण कर्मों की निर्जरा कम होती होगी, उसे आचार्य देवसेन के ये शब्द ध्यान से पढ़ना चाहिये। **'पहले हजार वर्ष तप करने पर जितना कर्मों का नाश होता था, वह आज हीन संहनन में एक वर्ष के तप द्वारा कर्मों का नाश होता है।'**

उत्तर भारत में दिगम्बर जैन मुनियों के दर्शन करने का श्रावकों को सैकड़ों वर्षों से सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ प्रतीत होता है। बनारसीदास जी के आत्मचरित्र **अर्ध कथानक** से ज्ञात होता है कि साक्षात दिगम्बर गुरु का दर्शन न होने के कारण वे अजानकारीवश विचित्र प्रवृत्ति में तत्पर थे। वे लिखते है कि चन्द्रभान, उदयकरण और धानसिंह नामक मित्रों के साथ अध्यात्म की चर्चा करते हुए एक कमरे में नग्न होकर फिरते थे और समझते थे कि हम निर्ग्रन्थ मुनिराज बन गये। यदि सकल संयम धारी दिगम्बर मुनि का दर्शन हुआ होता तो वे नग्न मुनि बनने का अद्भुत नाटक नहीं खेलते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन संस्कृति के विकास तथा उन्नति के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि कैवल्य सूर्य की रश्मियों से विश्व का मोहान्धकार दूर करने वाले तीर्थंकरों ने अपने जन्म द्वारा उत्तर भारत की भूमि को पवित्र किया तथा निर्वाण द्वारा भी उसे तीर्थस्थल बनाया। किन्तु उनकी धर्ममयी देशना रूप अमृत को पीकर महत्वपूर्ण वीतरागता रस भरे शास्त्रों का निर्माण करने वाले धुरंधर आचार्यों ने अपने जन्म से दक्षिण भारत की भूमि को श्रुति तीर्थ बनाया।

उसी ज्ञान धारा से पुनीत दक्षिण भारत के बेलगांव जिले को नररत्न आचार्य शांतिसागरजी महाराज की जन्मभूमि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भोजग्राम के समीप लगभग चार मील की दूरी पर विद्यमान ग्राम येलगुड में आषाढ़ कृष्णा 6 सन् 1862 में बुधवार की रात्रि में इनका जन्म हुआ था।

चारित्र चक्रवर्ती श्रमणराज

यह भारत का सौभाग्य रहा है, कि उसको चारित्र चक्रवर्ती, श्रमणराज आचार्य शांतिसागर महाराज नाम के दिगम्बर जैन महर्षि के रूप में आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हुई थी। आज श्रमण संस्कृति की परम्परा में उनका महती योगदान रहा है। यदि आराध्य विकारों का पुंज होगा तो उसका आश्रय ग्रहण करने से कैसे कल्याण होगा ? उन्होंने श्रेष्ठ अहिंसा, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रहादि की समाराधना की थी। तथा 36 दिन पर्यन्त आहार पान का परित्याग कर उच्च अहिंसा की साधना के हेतु कुंथलगिरि की जैन तपोभूमि से 18 सितम्बर 1955 के प्रभात में परलोक यात्रा की थी। वे चंद्रमा के समान अत्यंत शीतल थे तथा सूर्य की भांति तपस्या के तेज से अलंकृत थे। वह आध्यात्मिक ज्योति लोकोत्तर थी जिसमें भानु और शशि की विशेषताएं केन्द्रित थी। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में **'वे सच्चे तत्वज्ञानी हैं जो आत्मा के रोग को दूर करते हैं और हमें बधंन से बचाने में सहायक होते हैं।**

विश्व संस्कृति के सूत्रधार

इन वाक्यों के भीतर गहरी सच्चाई छिपी है। संसार में जितनी वेशभूषा हैं, वे मनुष्य-मनुष्य में भेद पैदा करती है। परिग्रह का आवरण ही संसार का जाल फैलाता है। जब इन महान मुनिराज ने दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली तब ये सूर्य और चन्द्रमा के समान प्राकृतिक रूप में आ गये। सूर्य और चन्द्रमा को कौन नहीं अपनाता है, उनसे अपना कल्याण साधन नहीं करता है? इसी प्रकार ये आध्यात्मिक विभूतियां प्रसुप्त, मोही मानव को जगाती हुई कल्याण के मंदिर में प्रवेश के लिये प्रेरणा प्रदान करती हैं। इन्हीं संतों के चरणों में विश्व संस्कृति का मंगलमय मार्ग छुपा हुआ है।

आचार्यश्री ने आधुनिक शिथिलाचार पूर्ण प्रवृत्तियों की आलोचना करके समाज को कुमार्ग में पतन रोका था। आगम के प्रमाण बताकर कोई भी व्यक्ति आचार्यश्री को प्रभावित कर सकता था और आगम के विरुद्ध विधाता भी आकर उनकी श्रद्धा को विचलित नहीं कर सकता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य शांतिसागरजी की परम्परा का संस्कृति को सबसे बड़ा योगदान यह था कि आचार्य श्री आगमोक्त औषधि देते थे। उनका करुणा पूर्ण हृदय यही चाहता था कि इस जीव का कल्याण हो तथा साथ में समाज भी मोक्ष मार्ग में संलग्न हो जावे। आचार्य संघ के द्वारा लोक कल्याण, सामाजिक सुव्यवस्था एवं सदाचार के रक्षणार्थ पश्चिमी हवा के विरुद्ध विधवा-विवाहादि के निषेध का जोरदार प्रचार किया जाता था। शील के पथ पर चलकर ही सती सीता, साध्वी चंदना आदि नारी जाति के गौरव की निधि बनी। महाराजश्री द्वारा व्यवहार और निश्चय दोनों धर्मों का उपदेश दिया जाता था। साधारण जन-समाज के लिये व्यवहार, चरित्र, शील, संयम, सदाचार का उपदेश दिया जाता था। वे अत्यंत सुलझे हुए प्रशान्त, निस्पृह, श्रेष्ठ जीवन वाले चिंतक तथा अप्रतिम अहिंसक सन्त थे। उनकी सारी प्रवृत्तियां अहिंसा के भाव से भूषित थी।

आचार्य श्री की परम्परा का श्रमण संस्कृति को यह भी योगदान रहा है कि इन सन्मार्ग के प्रभावक प्रहरियों के कारण ही समाज का शील और संयमरूपी रत्न कुशिक्षा तथा पाप-प्रचार रूपी डाकुओं द्वारा लूटे जाने से बच गया। **'सच्चा कल्याण पाप परित्याग'** में है। इस आचार्य वाणी पर जब भी ध्यान चला जाएगा, तब ही कल्याण की प्राप्ति होगी।

जैसे आकाश से मेघमंडल द्वारा की गई वर्षा चारों ओर हरित वनस्पति का सुंदर साज सजाती है इसी प्रकार इन महापुरुष की कल्याणकारी धर्मवर्षा के द्वारा आत्म कल्याण का उपवन भी हरा-भरा हो जाता है। उससे जो जीव का कल्याण होता था। उसका मूल्य रिजर्व बैंक की सारी सम्पत्ति से भी अधिक हैं।

इस दुषमाकाल में विषय भोग की सरिता बह रही है सब उसी में स्वेच्छा से डुबकी लगाते हैं। आगम भी कहता है कि इस काल की ऐसी ही प्रवृत्ति होगी। फिर भी आचार्यश्री का अपूर्व व्यक्तित्व असाधारण रूप से संयम के भावों को जगा रहा था। यह उनका सबसे बड़ा योगदान है।

रत्नत्रय संजीवनी दाता वैद्य

आचार्यश्री का जीवन ही स्वयं उपदेश देता हुआ लोगों को सत्कार्यों तथा उज्ज्वल चरित्र की ओर प्रेरित करता था। आचार्य श्री एक सिद्धहस्त चिकित्सक के रूप में प्रतीत होते थे कि जिनके द्वारा दी गई संयमरूपी औषधि मोह रोगी को तत्काल शांति प्रदान करती थी। अतः वे पीयूष पाणि वैद्य के रूप में दिखते थे। रत्नत्रय की औषधि देकर रोग दूर करते थे। यह कला महाराज श्री ने जिनेन्द्र की आराधना द्वारा प्राप्त की थी।

अंत में आचार्य श्री के चारित्र को चरितार्थ करती हुई निम्न पंक्तियां श्रद्धापूर्वक उन्हें समर्पित करती हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंभीर, पूर्ण, सुविशाल – शरीर धारी,
    संसार–त्रस्त जन के द्रुत आर्त्तहारी।
औ वंश–राष्ट्र, पुर, देश सुमानवीय,
    जो थे सु– 'शांन्ति' यति नायक वन्दनीय॥

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के शब्दों में –

प्रायः कदाचरण पूर्ण अहो धरा थी
    सन्मार्ग रूढ़ मुनि मूर्ति न पूर्व में थी।
चारित्र का नव नवीन पुनीत पंथ,
    जो भी यहां दिख रहा तव देन संत॥

* D/o श्री मुकेश जैन,
C/o पं. खेमचंद जैन
रॉयल हॉस्पिटल एण्ड नर्सिंग होम,
गढ़ा रेलवे क्रासिंग,
जबलपुर (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
वर्तमान कार्यकारिणी

2017-19

गौरव अध्यक्ष	:	स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी, हस्तिनापुर
संरक्षक	:	पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी
	:	डॉ. शेखरचंद जैन, अहमदाबाद
अध्यक्ष	:	पं. खेमचंद जैन, जबलपुर (म.प्र.)
कार्याध्यक्ष	:	डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर
उपाध्यक्ष	:	डॉ. सविता जैन, रतलाम
	:	प्रो. टीकमचंद जैन, दिल्ली
	:	डॉ. सूरजमल बोबरा, इन्दौर
	:	पं. पदमचंद जैन शास्त्री, झाँसी
महामंत्री	:	पं. विजयकुमार जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ)
मंत्री	:	उषा पाटनी, इन्दौर
	:	पं. सुरेश जैन 'मारौरा', इन्दौर
सह मंत्री	:	पं. शीतलचन्द जैन, ललितपुर
	:	डॉ. अल्पना जैन, ग्वालियर
कोषाध्यक्ष	:	पं. चन्द्रप्रकाश जैन 'चन्दर', ग्वालियर
कार्य. सदस्य	:	डॉ. जीवनप्रकाश जैन, हस्तिनापुर
	:	पं. शिखरचंद जैन, सागर
	:	डॉ. देवकुमार जैन, रायपुर
	:	डॉ. सुशील जैन, मैनपुरी
	:	डॉ. प्रेमचंद रांवका, जयपुर
	:	डॉ. संजीव सराफ, वाराणसी
	:	पं. लालचंद जैन 'राकेश', भोपाल
	:	डॉ. अल्पना जैन, देवलाली
विशेष आमंत्रित	:	डॉ. मालती जैन, मैनपुरी
	:	डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन, भगवां
	:	डॉ. एस. के. जैन, भिण्ड
	:	पं. विजयकुमार जैन, मुम्बई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ ह्रीं श्री चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर-वीरसागर-शिवसागर-धर्मसागर-अजितसागर-श्रेयांससागर-अभिनन्दनसागराय नमः

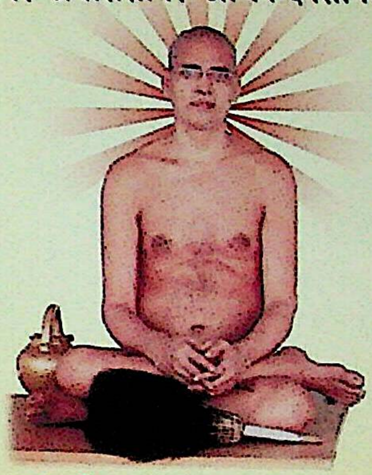

सप्तम् पट्टाचार्य श्री अनेकान्तसागरजी महाराज

श्रमण संस्कृति के संरक्षक, संवर्द्धक सन्यासी ही संसारियों को शांति का पथ प्रदर्शित करते हैं। संत ही भगवंत बनते हैं। संत ही श्रावकों की आत्मा में परमात्म स्वरूप का प्रादुर्भाव कराते हैं।

मूलाचार एवं मूलाराधना के आराधक साधक आगमोक्त चारित्र-चर्या-आहार-विहार-व्यवहार विचार से साक्षात्कार करने वाले आचार्य श्री शांतिसागरजी धर्म प्रभावना-आत्म भावना से सदैव जयवंत रहे। चेतन-अचेतन तीर्थोद्धारक, षट्खंडागम के उद्धारक, मुनि परम्परा के जीर्णोद्धारक, आर्ष परम्परानुरागी, परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महामुनिराज के अनन्त उपकार-उपहार हम सब पर बहुत हैं।

गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के तीन बार आचार्य श्री के पादमूल में रहकर आँखों देखा दृश्य भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-मांगीतुंगी के अवसर पर 16 माह तक सुनकर परमानन्द की अनुभूति की। प्रथमाचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज-पुरस्कृत आलेख संग्रह के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन ने कृति का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया उनको इसके लिए बहुत-बहुत आशीर्वाद। आचार्यश्री के समाधि दिवस पर विद्वत् गोष्ठी-श्रद्धांजलि महामहोत्सव इन्दौर में आयोजित करके उन्होंने महान पुण्यार्जन एवं धर्म प्रभावना का कार्य किया है।

प्रथमाचार्य श्री शांतिसागराय नमः !

इन्दौर वर्षायोग, 03.09.2018

- आचार्य अनेकान्तसागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमपूज्य, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

जन्म स्थान : टिकैतनगर, जिला बाराबंकी (उ.प्र.)

जन्मतिथि : आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि.सं. 1991 (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति : अग्रवाल दिगम्बर जैन, गोत्र : गोयल, नाम : कु. मैना

माता-पिता : श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत : ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा : चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से। नाम – क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा : वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्यश्री शांतिसागरजी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व :

* अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 400 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका।

डी. लिट् की मानद उपाधि :

* 1995 में डॉ. राममनोहर लोहिया अवध वि.वि., फैजाबाद तथा 8 अप्रैल 2012 को तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद द्वारा 'डी.लिट्.' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा :

* हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' तीर्थ का निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीरजी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

शैक्षणिक प्रेरणा :

* जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाईन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

Sugan/0930 212 55 94

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi